मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 57 • वर्ष 7, अंक 2 • अप्रैल 2017 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 और मज़दूर वर्ग पर उसका असर 3

भारतीय रेल : वर्ग-समाज का चलता-फिरता आईना 5

अमेरिका है दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी! 9

लुटेरों के झूठे मुद्दे बनाम जनता के वास्तविक मुद्दे

सोचो, तुम्हें किन सवालों पर लड़ना है!

सम्पादक मण्डल

पिछले कुछ महीनों से देश में ऐसा माहौल बनाया जा रहा है मानो इस देश के लोगों की महँगाई, बेरोज़गारी, मज़दूरों के शोषण, भ्रष्टाचार, पुलिस अत्याचार, दलितों-स्त्रियों पर हिंसा जैसी सारी समस्याएँ हल हो चुकी हैं। अब इस देश में बच्चे भूख और कुपोषण से नहीं मर रहे हैं, 12-12 घंटे खटने के बाद भी मज़दूर नारकीय ज़िन्दगी बसर नहीं कर रहे हैं, पैसेवालों की लूट-खसोट ख़त्म हो गयी है, क़दम-क़दम पर नेताशाही और अफ़सरशाही का भ्रष्टाचार लोगों का जीना हराम नहीं कर रहा है! देश में सबसे बड़ी समस्या यह है कि गोमाता पर ख़तरा आ गया है या हिन्दू धर्म ख़तरे में आ गया है। साल भर हज़ारों गायें पॉलिथीन खाकर मरती रहती हैं या कचरे के ढेरों में मुँह मारती रही रहती हैं तब उन पर ख़तरा नहीं आता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि ये सारे नकली मुद्दे असली मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए हैं। पूरा मीडिया भोंपू बना दिनो-रात ऐसा शोर मचा रहा है कि लोग अपना अच्छा-बुरा सोचना ही भूल जायें। हिटलर और मुसोलिनी के आज़माये हुए नुस्खों पर

चलते हुए लोगों के दिमाग़ ऐसे बनाने की कोशिश की जा रही है कि वे ख़ुशी-ख़ुशी अपने क़त्लख़ाने की ओर बढ़ते जायें और साथ-साथ अपने क़ातिलों की तारीफ़ में नारे भी लगाते जायें।

यह एक ख़तरनाक स्थिति है। हम सभी सोचने वाले लोगों से अपील करते हैं, हम उन सभी मेहनतकशों, उन सभी नौजवानों से अपील करते हैं जो अभी झूठ के नशे से पागल नहीं हुए हैं — चेत जाओ! जाग जाओ! आँखें खोलकर सच्चाई को देखने की कोशिश करो, वरना पूरा देश ग़ुलामों के बाड़े और ख़ून के दलदल में तब्दील कर दिया जायेगा और तब तुम कुछ करने लायक नहीं रह जाओगे! तब तक बहुत देर हो चुकी होगी!

सोचो, समझो, देखो। लोकलुभावन जुमलेबाजी और ''अच्छे दिनों'' के झूठे सपनों को दिखलाकर भाजपा भले ही केन्द्र की सत्ता पर काबिज़ हो गयी हो, लेकिन पिछले तीन साल में एक बात साफ़ हो गयी है कि उसका असली मक़सद पूँजीवाद की डूबती नैया को पार लगाना है। संघ, भाजपा तथा मोदी भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं

(पेज 8 पर जारी)

उत्तर प्रदेश में किसानों की क़र्ज़-माफ़ी

क़र्ज़-माफ़ी के टोटके से खेती-किसानी का संकट नहीं हल हो सकता

आनन्द सिंह

उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में जीत हासिल करने के लिए भाजपा और संघ परिवार ने हिन्दू-मुस्लिम ध्रुवीकरण बढ़ाने के लिए हर चुनाव की तरह इस बार भी तमाम घटिया हथकण्डे अपनाये। लेकिन हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों को अच्छी तरह पता था कि केवल साम्प्रदायिकता की आग फैलाकर वे सत्ता के गलियारों तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए उन्होंने अपने चुनाव प्रचार के दौरान साम्प्रदायिकता के ज़हर को विकास के जुमलों और कुछ आर्थिक मुद्दों की चाशनी के साथ परोसा। जहाँ एक ओर चुनाव प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी ने शमशान-क़ब्रिस्तान की बात की, वहीं चुनावों के ठीक पहले उन्होंने किसानों की क़र्ज़-माफ़ी का वायदा करके क़र्ज़ में डूबी विशाल किसान आबादी को अपने खेमे में करने की चाल चली। जैसाकि चुनाव के नतीजों ने दिखाया, फ़ासिस्ट अपनी इस चाल में क़ामयाब रहे। पूरे देश में जारी पूँजीवादी कृषि संकट और उसकी वजह से किसानों के बेतहाशा क़र्ज़ को देखते हुए पिछले कुछ अरसे से उत्तर प्रदेश सहित कई राज्यों में किसानों की क़र्ज़-माफ़ी के क़यास लगाये जा रहे थे। हालाँकि बैंकों के शीर्ष अधिकारी और तमाम बुर्जुआ अर्थशास्त्री क़र्ज़-माफ़ी से अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बोझ के मद्देनज़र केन्द्र व राज्य सरकारों को लगातार आगाह कर रहे थे, लेकिन उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व में बनी भाजपा सरकार ने उन्हें धता बताते हुए अपनी पहली कैबिनेट बैठक में ही छोटे व सीमान्त किसानों की क़र्ज़-माफ़ी की घोषणा करते हुए 2019 के लोकसभा चुनावों के पहले किसानों में भाजपा के आधार को सुदृढ़ करने की अपनी मंशा साफ़ ज़ाहिर कर दी। इसमें कोई दो राय नहीं कि इस क़दम से किसानों के एक हिस्से को तात्कालिक राहत मिलेगी और इसलिए किसानों के बीच भाजपा का आधार मज़बूत होगा। लेकिन **जो लोग यह मान बैठे हैं कि इस फ़ैसले से यूपी में खेती-किसानी का संकट कम हो जायेगा और छोटे किसानों के अच्छे दिन आ जायेंगे, वे बहुत बड़े मुग़ालते में जी रहे हैं, क्योंकि पिछले कुछ दशकों से भारतीय कृषि एक गम्भीर संकट की शिकार है और किसानों के बढ़ते क़र्ज़ उस संकट का लक्षण मात्र हैं।** तमाम बुर्जुआ अर्थशास्त्री भी यह मानते हैं कि किसानों की क़र्ज़-माफ़ी जैसे लोकलुभावन हथकण्डों से भारतीय कृषि के संकट में कोई कमी नहीं आने वाली है। साथ ही यह आँकड़ों सहित दिखाया जा सकता है कि **इस क़दम से किसानों को जो तात्कालिक राहत मिलेगी, वो भी छोटे किसानों के एक छोटे हिस्से तक ही सीमित रहेगी।**

योगी आदित्यनाथ सरकार द्वारा लिये गये 36,359 करोड़ रुपये के क़र्ज़-माफ़ी के फ़ैसले को मीडिया में इस तरह से प्रचारित किया गया मानो इससे सभी 2.15 करोड़ छोटे व सीमान्त किसानों को लाभ होगा। लेकिन सच्चाई तो यह है कि सीमान्त व छोटे किसानों के एक छोटे हिस्से को ही इसका लाभ मिलेगा। आइए आँकड़ों के ज़रिये इस सच्चाई का पता लगायें। सरकारी आँकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में कुल 2.3 करोड़

(पेज 4 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

धुएँ में उड़ता बचपन

मेरा गाँव राजस्थान के हनुमानगढ़ ज़िले में स्थित है। गाँव की ज़मीन व गाँव की रोही में उपलब्ध जिप्सम की प्रचुर मात्रा की वजह से क्षेत्र में चर्चित है। आरम्भ में जिप्सम आर्थिक दृष्टि से इस गाँव की अहम कड़ी था। दरअसल जिप्सम के खनन तथा उसको ट्रकों व ट्रालियों में लोडिंग करने के रूप में गाँव के समूचे मज़दूर वर्ग का एकमात्र रोज़गार था। जिप्सम की खनन-प्रक्रिया एवं फिर उसकी वाहनों में लोडिंग करना एक ज़ोखिमपूर्ण तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तो था ही, साथ में एक ग़ैर-क़ानूनी कार्य भी था। कई मर्तबा जिप्सम खनन के समय पुलिस के मौक़े पर पहुँच जाने के बाद तमाम साधनों को ज़ब्त कर सम्बन्धित व्यक्तियों पर कार्रवाई की जाती थी। गाँव में जिप्सम खनन के दौरान खान के ढह जाने के परिणामस्वरूप कुछ दुर्घटनाएँ भी घटी हैं, जिनमें कई मज़दूरों की जानें गयी हैं। लेकिन खेती की निराशाजनक हालत के बाद घोर बेरोज़गारी के कारण यह सब करना गाँव के मज़दूर वर्ग की विवशता थी। बाद में अत्याधुनिक मशीनरी के प्रचलन के बाद जिप्सम खनन एवं लोडिंग की प्रक्रिया जेसीबी सरीखी मशीनों से अंजाम दी जाने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि गाँव के हर मज़दूर का रोज़गार छिन गया।

जिप्सम की पर्याप्त उपलब्धता देखते हुए शहरों व महानगरों में बैठे धनासेठों ने गाँव के आस-पास ही चूना-फ़ैक्टरियाँ स्थापित करना शुरू कर दिया। यह प्रक्रिया इतनी तीव्र गति से हुई कि गाँव के दोनों तरफ़ हाइवे के किनारे-किनारे इन फ़ैक्टरियों का अम्बार लग गया। जिनकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ ही रही है। बरमसर गाँव पूँजीपतियों का आकर्षण-केन्द्र बन गया। ऐसी स्थिति में गाँव के मज़दूर वर्ग के रोज़गार का एकमात्र विकल्प ये फ़ैक्टरियाँ ही रह गयीं, फलत: समूचा मज़दूर वर्ग इन चूना-फ़ैक्टरियों में भर्ती हो गया। इन मज़दूरों के अलावा बिहार से मज़दूरों का आगमन भी शुरू हो गया। वर्तमान में अधिकांश बिहारी यहाँ पर काम करते हैं। विकसित अत्याधुनिक तकनीकों तथा दिन-रात मज़दूरों के बेतहाशा शारीरिक शोषण के बीच धन्नासेठ रोज़ाना बेहिसाब उत्पादन करते हैं। लेकिन इन फ़ैक्टरियों के स्थापित होने के बाद इनकी चिमनियों से निकलने वाले ज़हरीले धुएँ की वजह से वातावरण की निरन्तर क्षति के साथ गाँव की रोही की उत्पादन क्षमता में भी भारी गिरावट आयी है। इन फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों के श्वसन सम्बन्धी रोग होने की पर्याप्त सम्भावना रहती है क्योंकि चूना फेफड़ों व अंगों के लिए बेहद हानिकारक होता है।

इन सबसे भी भयानक स्थिति तब दृष्टिगत होती है जब इन फ़ैक्टरियों में गाँव के स्कूली बच्चों को काम करते हुए देखा जाता है। निम्न वर्ग तथा मध्यमवर्गीय परिवारों में आर्थिक समस्याएँ होना आम बात है, इसी के चलते उन परिवारों के बच्चे सहज-सुलभ कार्य हेतु इन फ़ैक्टरियों का रुख़ करते हैं। उसके बाद इन बच्चों को लगे दिहाड़ी के चस्के को ये लोग बड़े शातिराना व सुनियोजित तरीक़े से इस्तेमाल करते हैं जिससे ये बच्चे उस मीठे प्रलोभन से बाहर नहीं निकल पाते। इस तरह अशिक्षित एवं ग़ैरज़िम्मेदार परिजनों की सहमति से लगभग बच्चों का भविष्य यूँ धुएँ में उड़ रहा है। जो सर्वाधिक चिन्तनीय एवं विचारणीय पहलू है। जिप्सम के अन्धाधुन्ध खनन के परिणामस्वरूप जिप्सम की उपलब्धता अब आंशिक ही रह गयी है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रशासन की नाक के नीचे घटित होती है। चूने में पिसता बचपन हाथ पर हाथ धरे सब लोग इत्मिनान से देख रहे हैं।

कुमार श्याम,
बरमसर, हनुमानगढ़, राजस्थान

कार्टूनिस्ट तन्मय त्यागी की नज़र से

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!
इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" - **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmaillcom
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 और मज़दूर वर्ग पर उसका असर

स्वास्थ्य जैसी समाज की मूलभूत ज़रूरत के प्रति सरकार ने जो नीति बनाई है, वह एक छोटे से धनाढ्य वर्ग और मध्य वर्ग के हित में है।

– पराग वर्मा

भारत में हर साल लाखों लोग सही समय पर सही इलाज न मिल पाने के कारण अपनी जान गँवा रहे हैं। ऐसी हालत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति एक बहुत अहम विषय बन जाती है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति सरकार द्वारा समाज में स्वास्थ्य व्यवस्थाओं की योजना बनाने की दिशा और तरीक़े का ब्यौरा होती है। हाल ही में केन्द्रीय कैबिनेट द्वारा पारित की गयी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 में सरकार का रुझान एक बार फिर निजी क्षेत्र द्वारा मुहैया कराई जाने वाली स्वास्थ्य सेवाओं को ही बढ़ावा देने का नज़र आता है। इस स्वास्थ्य नीति में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में आउटसोर्सिंग द्वारा प्राइवेट सेक्टर को और अधिक शामिल करने की सिफ़ारिश की गयी है और एक बार फिर 15 साल बाद वही रास्ता पकड़ा गया है जो इतने सालों में एक स्थायी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का ढाँचा नहीं खड़ा कर पाया है। भूमण्डलीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से ही भारतीय राज्य लोक कल्याण के वायदों से लगातार मुकरता जा रहा है और इसी के साथ ही स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण भी बढ़ता जा रहा है। निजीकरण और मुनाफ़ाख़ोरी की प्रवृत्ति ने इस क्षेत्र में सामाजिक न्याय, मानवीय संवेदना व सहानुभूति के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी है।

आज आमजन के लिए स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त करना दुष्कर हो गया है। पिछले दो दशकों में मेडिकल-शिक्षा के क्षेत्र में भी निजी शिक्षण संस्थानों को ख़ूब बढ़ावा दिया गया और सार्वजनिक/सरकारी संस्थाओं को निरुत्साहित किया गया है जिसके कारण चिकित्सा के क्षेत्र में अध्ययन करना काफ़ी महँगा हो गया है। मेडिकल प्रवेश परीक्षा की तैयारी के ख़र्च और निजी शिक्षण संस्थानों की फ़ीस इतनी अधिक हो चुकी है कि डॉक्टर बनने का सौभाग्य आमतौर पर केवल उन विद्यार्थियों को मिल पाता है जिनके पास पूर्व अर्जित पूँजी होती है। इस तरह की व्यवस्था में ही व्यापम जैसे घोटाले होते हैं और कई मुन्ना भाई चिकित्सक बन जाते हैं और योग्य व प्रतिभाशाली छात्रों के अवसर छीनकर उन्हे निराशा व कुंठा में धकेल दिया जाता है। कॉरपोरेट घरानों व बीमा कम्पनियों की मिलीभगत से एक असुरक्षा और अनिश्चितता का माहौल भी बनाया गया है जो इन कम्पनियों को और ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के मौक़ा देता है। डॉक्टर-पेथोलॉजी-लेबोरेटरी व दवा कम्पनियों के गँठजोड़ से भी मुनाफ़ाख़ोरी का पूरा तन्त्र चल रहा है जिसमें आमजन दिन-दहाड़े लूटा जाता है। ड्रग सप्लाई और मैन्युफ़ैक्चरिंग के क्षेत्र में सुरक्षा मानकों की धज्जियाँ अक्सर उड़ाई जा रही हैं और भ्रष्टाचार चरम पर है। इसी तरह अवैध ड्रग ट्रायल किये जाते हैं तथा मरीज व परिजनों की अज्ञानता के कारण अंगों की चोरी और व्यापार होता है। पूँजीवादी मुनाफ़ाख़ोरी ने स्वास्थ्य क्षेत्र में शोषण का ऐसा कुचक्र बना दिया है जिसमें ग़रीब और मज़दूर न चाहते हुए भी फँस जाता है। सस्ते इलाज की तलाश में ग़रीब व्यक्ति झोलाछाप डॉक्टर, अप्रशिक्षित और अयोग्य ढोंगी नीमहकीम-वैद्य, अन्य फ़र्ज़ी पैथियों के व्यवसाय में लिप्त तथाकथित डॉक्टर तथा अपठ्य दवाई सुझाव करने वाले दुकानदारों से इलाज करवाता है और इस तरह सरकार की इन नीतियों ने ग़रीब व्यक्ति के जीवन के प्रति गम्भीर लापरवाही तथा संकट के रास्ते निर्मित कर दिये हैं।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 को ध्यान से समझें तो यह नयी स्वास्थ्य नीति स्वास्थ्य के क्षेत्र में लूट को रोकने तथा निजी व कॉरपोरेट व्यवसाय तन्त्र के शिकंजे से आमजन को मुक्त करने के प्रति कोई विश्वास नहीं जगाती है। मृत्यु दर, अनुमानित जीवन काल की दर और जानलेवा और संक्रामक बीमारियों की मौजूदगी जैसे कुछ मापदण्डों में पुराने तय किये गये लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सके इसलिए सुधार के लिए नये लक्ष्यों को तय तो ज़रूर किया गया है, परन्तु स्वास्थ्य सेवाओं के लिए सकल घरेलू उत्पाद के केवल 1.3 प्रतिशत हिस्से का वित्तीय समर्थन निर्धारित किया गया है, जो इतना कम है कि इन नये लक्ष्यों को पाना भी एक सुदूर स्वप्न ही दिखाई पड़ता है। स्वास्थ्य नीति प्राथमिक उपचार पर ज़ोर देते हुए बजट के दो तिहाई हिस्से को प्राथमिक उपचार व्यवस्थाओं पर ख़र्च करने का निर्देश देती है, और बाक़ी बजट को द्वितीय और तृतीय श्रेणी के उपचार पर ख़र्च किया जायेगा। परन्तु साथ ही 2025 तक सकल घरेलू उत्पाद का केवल 2.5 प्रतिशत हिस्सा ही उपचार व्यवस्थाओं पर ख़र्च करने की बात भी करती है जो कि किसी भी विकासशील देश की तुलना में बहुत कम है। इतने कम बजट से प्राथमिक उपचार की सुविधाओं में सुधार ला पाना असम्भव सा लगता है और फिर घूम-फिर कर ग़रीब मज़दूर वर्ग को किसी भी श्रेणी के इलाज के लिए प्राइवेट स्वास्थ्य सेवाओं के विकल्प के ऊपर निर्भर होना पड़ेगा जिसका ख़र्च इतना अधिक होता है कि ग़रीब बीमार मज़दूर इलाज के वास्ते लिये गये क़र्ज़ के बोझ से ही मर जाता है।

नेशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन (एनएसएसओ) की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ भारत की 80 फ़ीसदी से ज़्यादा आबादी के पास न तो कोई सरकारी स्वास्थ्य योजना पहुँचती है और न ही कोई निजी बीमा, ऐसे में जान बचाने के लिए उनके पास इलाज के लिए क़र्ज़ लेना ही एकमात्र उपाय बचता है। जब सरकार हर साल लाखों करोड़ रुपये कॉरपोरेट घरानों को करों में छूट और सब्सिडी देती है, तब तो राजकोषीय घाटे की चर्चा नहीं होती, लेकिन शिक्षा व स्वास्थ्य बजट को बढ़ाने की बात सुनते ही तमाम बुर्जुआ अर्थशास्त्री राजकोषीय घाटे के बढ़ने पर चिन्ता ज़ाहिर करने लगते हैं।

भारत में स्वास्थ्य व्यवस्था की बदहाली का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यहाँ 1,050 मरीजों के लिए सिर्फ़ एक ही बेड उपलब्ध है। इसी तरह 1,000 मरीजों के लिए सिर्फ़ 0.7 डॉक्टर मौजूद हैं। इतनी बड़ी आबादी के लिए भारत पहले से ही स्वास्थ्य क्षेत्र पर सबसे कम ख़र्च करने वाला देश है। दुनिया-भर में इलाज पर अपनी जेब से सबसे ज़्यादा ख़र्च भारत में ही होता है। अनुमान है कि हर वर्ष इलाज के ख़र्च के कारण लगभग छह करोड़ लोग ग़रीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं। राजनेता अमीर वर्ग के हित में नीतियाँ बनाते हैं और आमजन के सामने देश को विकसित करने की हवा बाँधते हैं। एक प्रगतिशील भरोसेमन्द तरीक़ा तो यह होता, जब स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच को जनता का एक मूलभूत अधिकार बनाने की दिशा में कार्य होता और वैसी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का ढाँचा खड़ा करने के लिए उचित बजट दिया जाता, परन्तु इस स्वास्थ्य नीति में इसके ठीक उलट प्रावधान हैं।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति को ध्यान से पढ़ने से साफ़ समझ आता है कि सरकार आगे भी निजी क्षेत्र के प्रबन्धक के रूप में ही स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार की योजना बना चुकी है। जहाँ एक ओर सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की अहमियत को बताया गया है, वहीं दूसरी ओर कार्यनीति के तौर पर निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने की ही बात की गयी है। इस नीति में समता, सार्वभौमिकता, नैतिकता, अखण्डता, गुणवत्ता और जवाबदेही जैसे कई जुमलों का इस्तेमाल तो ज़रूर किया गया है, पर अगर इस नीति के विवरण पर ग़ौर करें तो न ही पर्याप्त वित्तीय प्रयोजन है और न ही किसी तरह की सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का ढाँचा बनता दिखाई देता है जिसमें सही मायने में इन सिद्धान्तों पर अमल होगा।

स्वास्थ्य नीति में मातृ और शिशु मृत्यु दर में घटने को बढ़ा-चढ़ाकर बतलाया गया है जो कि किसी और विकासशील देशों से अभी भी कम ही है और दमा, मलेरिया, डेंगू, चिकुनगुनिया जैसी संक्रामक बीमारियों को नियन्त्रण में न कर पाने की सरकार की विफलता को छिपाया गया है। स्वास्थ्य सेवा के व्यवसाय में वृद्धि की प्रशंसा की गयी है, परन्तु यह नहीं बताया गया कि ये जो व्यवसाय है इसकी सेवाओं तक पहुँच केवल मध्य वर्ग और धनाढ्य वर्ग ही है और इसकी वृद्धि को पूरे समाज या देश की वृद्धि के तौर पर देखना नासमझी होगी। सब्सिडी में कटौती और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के बुनियादी ढाँचे में बदलाव एक अहम बदलाव है। सरकारी व्यय में बढ़ोत्तरी का कारण बताते हुए, सार्वजनिक-निजी साझेदारी के मॉडल को अपनाये जाने पर ज़ोर दिया गया है परन्तु इस बदलाव से स्वास्थ्य सेवाओं की क़ीमतों पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इतनी महँगी स्वास्थ्य सेवाओं के चलते कितने और लोग ग़रीबी रेखा के नीचे हो जायेंगे, इसे पूरी तरह नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है। जिस फलते-फूलते स्वास्थ्य सेवा उद्योग की चर्चा की जाती है इसमें ये भी ग़ौर करना चाहिए कि इसका उपभोग जो वर्ग कर रहा है, वह जनसंख्या का केवल 1 प्रतिशत हिस्सा है, परन्तु वह 58 प्रतिशत की सम्पत्ति का मालिक भी है। ग्रामीण भूमिहीन किसान, अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाला मज़दूर और अन्य अनेकों मज़दूर जो हर दिन स्वास्थ्य सेवाओं की महँगाई के कारण त्रस्त हैं, उनके लिए इस फलते-फूलते स्वास्थ्य उद्योग के भला क्या मायने हैं? समाज का बहुसंख्यक हिस्सा होने के बावजूद मज़दूर वर्ग के लिए इस व्यापक स्वास्थ्य सेवा की योजना में कुछ भी नहीं है। मध्य वर्ग और धनाढ्य वर्ग के द्वारा उपभोग की जाने वाली स्वास्थ्य सेवाओं के चलते एक फलता-फूलता स्वास्थ्य उद्योग तैयार हुआ है और उसमें होने वाली बढ़ोत्तरी को बड़े उत्साहपूर्वक बताया गया है जबकि ग़रीबी रेखा से नीचे और उससे ज़रा ऊपर रहने वाले अनेकों लोग एक न्यायसंगत स्वास्थ्य सेवा से वंचित होते जा रहे हैं। इस तरह स्वास्थ्य सेवा को एक बाज़ार में बिकती हुई वस्तु के रूप में रूपान्तरित किया जा रहा है और सार्वजनिक क्षेत्र में इस तरह के प्रतिबन्धित वित्तीय समर्थन के चलते और बहुत से अनेक ग़रीब बेहतर स्वास्थ्य सेवा से वंचित ही रहने वाले हैं और इस नीति के चलते स्वास्थ्य सूचकांक में सही मायनों में प्रगति होना नामुमकिन है। कमज़ोर नियन्त्रक ढाँचे में प्राइवेट सेक्टर को और बढ़ावा देना से प्राइवेट सेक्टर को नियमों और क़ानून के तहत बाँधना मुश्किल होता जा रहा है और जिसका साफ़ असर स्वास्थ्य सेवाओं के निर्वाह में ढेरों अनियमितताओं में देखने को मिलता है। इस स्वास्थ्य नीति के उद्देश्य में और ढाँचे में जानबूझकर एक अस्पष्टता बरती गयी है, जिससे कि ग़रीब वर्ग से किया गया धोखा दिखाई न पड़े। वित्तीय बजट का ढिंढोरा ज़्यादा पीटा गया है, जबकि असलियत यह है कि प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा में भी सरकार द्वारा वित्तीय निवेश कम किया गया है। यह स्वास्थ्य नीति हर मोर्चे पर मज़दूर वर्ग और ग़रीबों के ख़िलाफ़ है और केवल प्राइवेट उद्योगों और उद्योगपतियों के हित में है।

स्वास्थ्य जैसी समाज की मूलभूत ज़रूरत के प्रति सरकार ने जो नीति बनाई है, वह एक छोटे से धनाढ्य वर्ग और मध्य वर्ग के हित में है। पूँजीपति वर्ग मज़दूर के शोषण से एकत्रित की हुई पूँजी के कारण या तो स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में धन्धा करेगा या फिर इन सेवाओं का उपभोक्ता होगा। मज़दूर वर्ग को इस तरह की नीतियाँ हमेशा भगवान व भाग्य के भरोसे ही रख छोड़ती हैं। इस नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ मज़दूर आवाज़ न उठा दें, इसलिए उसे बहलाने के और भी तरीक़े सरकार को आते हैं। आजकल सियासी जुमलों की बहुतायत है। जब स्वास्थ्य की चर्चा होती है तो स्वच्छ भारत अभियान, कुपोषण विरोधी अभियान, नशामुक्ति अभियान, रेल-रोड यात्री सुरक्षा अभियान, लिंग परीक्षण विरोधी अभियान, तनाव मुक्ति अभियान, वायु व जल प्रदुषण से मुक्ति और योग और व्यायाम का महत्व इत्यादि मुद्दों पर ही बातें होती हैं, परन्तु अगर तार्किक ढंग से देखा जाये तो मनुष्य के स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध तो पर्याप्त और पौष्टिक भोजन, न्यायसंगत वेतन, काम करने के सही तरीक़ों, सार्वजनिक परिवहन की उपलब्धता और सही शिक्षा से भी है। जब इन पहलुओं पर नज़र डालते हैं तो पता चलता है कि सरकार इन पर बात नहीं करती, क्यूँकि इन मुद्दों पर बात करने के लिए उसे पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ बोलना पड़ेगा, जिसके कारण मज़दूर वर्ग के लिए ये सब कुछ सुविधाएँ पाना सम्भव नहीं है। पूँजीवाद में सरकार पूँजीपति वर्ग की प्रबन्धक होती है और मज़दूर वर्ग को केवल जुमलों में उलझा के रखना चाहती है। ऐसे में इस व्यवस्था के दायरे में मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र राजनीति की माँग निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाओं को एक मूलभूत अधिकार बनाने की होनी चाहिए।

उत्तर प्रदेश में किसानों की क़र्ज़-माफ़ी

क़र्ज़-माफ़ी के टोटके से खेती-किसानी का संकट नहीं हल हो सकता

(पेज 1 से आगे)

किसान हैं जिनमें 1.85 करोड़ सीमान्त किसान (एक हेक्टेयर या 2.5 एकड़ से कम की जोत वाले), 30 लाख छोटे किसान (1-2 हेक्टेयर की जोत वाले) और शेष बड़े किसान (2 हेक्टेयर से अधिक जोत वाले) हैं। उत्तर प्रदेश सरकार की ख़ुद की घोषणा के अनुसार 2.15 करोड़ छोटे व सीमान्त किसानों में से क़र्ज़ माफ़ी का लाभ ले पा सकने वाले किसानों की संख्या लगभग 86 लाख ही होगी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के आँकड़ों के अनुसार प्रदेश में क़र्ज़ लेने वाले कुल छोटे व सीमान्त किसानों के आधे से भी कम किसानों ने बैंकों से क़र्ज़ लिया है। आधे से अधिक किसानों ने स्थानीय महाजन, व्यापारी, मित्र, रिश्तेदार या बड़े किसानों आदि से क़र्ज़ ले रखा है। ज़ाहिर है कि क़र्ज़ में डूबे अधिकांश छोटे-सीमान्त किसानों को योगी सरकार द्वारा लिये गये क़र्ज़-माफ़ी के फ़ैसले से तात्कालिक राहत भी नहीं मिलेगी, क्योंकि वह वाणिज्यिक बैंकों और कोऑपरेटिव बैंकों जैसे संस्थाओं द्वारा दिये गये संस्थागत क़र्ज़ पर ही लागू होता है। यही नहीं, आँकड़े यह भी दिखाते हैं कि किसान की जोत जितनी ही छोटी होती है, उसके द्वारा संस्थागत स्रोतों द्वारा लिये जाने वाले क़र्ज़ की सम्भावना उतनी ही कम होती है। एक एकड़ से कम जोत वाले किसानों में से केवल 28 प्रतिशत किसानों ने ही बैंकों से क़र्ज़ ले रखा है। यानी 72 प्रतिशत ऐसे अति-सीमान्त किसानों ने ग़ैर-संस्थागत स्रोतों से क़र्ज़ ले रखा है, जिन्हें क़र्ज़-माफ़ी का कोई लाभ नहीं होने वाला है। अत: छोटे किसानों के सापेक्षत: समृद्ध हिस्से को ही इस क़र्ज़-माफ़ी से राहत पहुँचेगी।

छोटे किसानों के सापेक्षत: समृद्ध हिस्से को क़र्ज़-माफ़ी से जो राहत मिलेगी, वह भी तात्कालिक ही रहेगी और पूँजीवादी खेती का संकट भविष्य में उसे क़र्ज़ के भँवरजाल की ओर ठेलता रहेगा। दरअसल खेती-किसानी का मौजूदा संकट ढाँचागत है। आज़ादी के बाद के दशकों में भारतीय कृषि में हुए पूँजीवादी विकास के साथ ही साथ गाँवों में किसानों का विभेदीकरण तेज़ी से बढ़ा है और जोतों का आकार क्रमश: कम से कम होता गया है। 1970-71 की कृषि जनगणना के बाद से भारत में खेती की औसत जोत में लगातार गिरावट देखने को आयी है। 2010-11 की ताज़ा कृषि जनगणना के मुताबिक़ भारत में जोतों का औसत आकार 1.15 हेक्टेयर रह गया है और सीमान्त किसानों की संख्या 67 प्रतिशत व छोटे किसानों की संख्या लगभग 18 प्रतिशत है। यानी किसानों की कुल संख्या का 85 प्रतिशत छोटे व सीमान्त किसान हैं। पूँजीवादी खेती होने की वजह से खाद, बीज, कीटनाशक व खेती के उपकरणों की क़ीमतें लगातार बढ़ने से खेती-बाड़ी की लागत में लगातार बढ़ोतरी हुई है।

1990 के दशक से नवउदारवादी नीतियाँ लागू होने के बाद से कृषि का संकट गहरा होता गया है क्योंकि खेती-बाड़ी में पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा देश के भीतर तक ही नहीं सीमित है, बल्कि विश्व बाज़ार की हलचलें भी उसे प्रभावित करती हैं। ऐसे में बड़ी जोत वाले किसान, जो कृषि के आधुनिक उपकरणों से खेती करते हैं और समय पर फ़सल कटवाकर जल्द से जल्द मण्डी में फ़सल पहुँचाने की क्षमता रखते हैं, वे अगर क़र्ज़ भी लेते हैं तो फ़ायदे में रहते हैं। छोटी जोत वाले किसान क़र्ज़ लेकर बड़ी मुश्किल से जो कुछ भी उगा पाते हैं उसे भी समय पर मण्डी में न पहुँचा पाने की वजह से उन्हें अपनी फ़सल की पर्याप्त क़ीमत नहीं मिल पाती। इस प्रकार मण्डी में बड़े किसानों का ही दबदबा क़ायम हो जाता है और अधिकांश किसानों के लिए खेती-बाड़ी एक घाटे का सौदा बन जाती है। ऊपर से अगर मौसम दग़ा दे जाता है तो छोटे किसानों की समस्या और बढ़ जाती है। जिस किसान के पास जितनी कम ज़मीन रहती है, उसकी तकलीफ़ें उतनी ही अधिक होती हैं। सीमान्त किसानों की हालत इतनी ख़राब होती जाती है कि अगर वे दूसरों के खेतों में मज़दूरी न करें, तो उनके परिवार का पेट पालना भी दूभर हो जाता है। गाँवों में बड़ी संख्या ऐसे अर्द्ध-सर्वहाराओं की है जिनकी नियति देर-सबेर पूरी तरह से सर्वहारा में तब्दील हो जाने की है। इसमें क़तई आश्चर्य की बात नहीं है कि गाँवों में हाल के दशकों में बड़े पैमाने पर छोटे किसान तबाह हुए हैं और यह प्रक्रिया समय बीतने के साथ बढ़ती गयी है। हालत यहाँ तक आ पहुँची है कि सेण्टर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डेवलपिंग सोसाइटी के एक हालिया सर्वेक्षण के मुताबिक़ गाँवों में 61 प्रतिशत किसान ऐसे हैं जो शहरों में नौकरी मिलने पर अपनी खेती-बाड़ी पूरी तरह से छोड़ने के लिए तैयार हैं। यह आँकड़ा चीख़-चीख़ कर भारतीय कृषि के संकट की कहानी बयान कर रहा है।

खेती-किसानी के संकट से निपटने के नाम पर क़र्ज़-माफ़ी के टोटका पहले भी कई बार आज़माया जा चुका है। लेकिन इसके बावजूद यह संकट लगातार गहराता गया है। आज़ाद भारत के इतिहास में सबसे बड़ी क़र्ज़-माफ़ी की घोषणा वर्ष 2008 में तत्कालीन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार ने की थी। उस समय देश-भर में किसानों के कुल 52 हज़ार करोड़ रुपये से भी अधिक के क़र्ज़ माफ़ किये गये थे। लेकिन उसके बाद से खेती का संकट कम होने की बजाय बढ़ा ही है, जिसका स्पष्ट संकेत देश के विभिन्न हिस्सों में किसानों की आत्महत्याओं की संख्या में बढ़ोतरी के रूप में दिखता है। कई अध्ययनों ने यह दिखाया है कि उस देशव्यापी क़र्ज़-माफ़ी से भले ही किसानों को तात्कालिक राहत मिली हो, लेकिन लम्बे कालखण्ड में देखने पर कृषि अर्थव्यवस्था पर उसका असर कुल मिलाकर नकारात्मक ही हुआ क्योंकि जिन इलाक़ों में किसानों ने अधिक क़र्ज़ लिया था, वहाँ क़र्ज़-माफ़ी के बाद बैंकों ने क़र्ज़ देना कम कर दिया। ज़ाहिर है कि इसका नुक़सान छोटे व सीमान्त किसानों को होता है जो स्थानीय महाजनों व आढ़तियों के चंगुल में फँस जाते हैं। यही नहीं, कम्प्ट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल (सीएजी) की ऑडिट में यह तथ्य भी सामने आया है कि 2008 में घोषित देशव्यापी क़र्ज़-माफ़ी के दौरान समय पर काग़ज़ात न उपलब्ध करा पाने की वजह से तमाम ग़रीब किसानों का क़र्ज़ माफ़ नहीं हुआ था और उसके उलट कई समृद्ध किसानों की क़र्ज़-माफ़ी हो गयी थी।

भारतीय कृषि के संकट का एक नतीजा गाँवों में भूमिहीन किसानों की लगातार बढ़ती संख्या के रूप में सामने आ रहा है। 2001 की जनगणना में भारत में गाँवों के भूमिहीन मज़दूरों की संख्या 10.67 करोड़ थी, जो 2011 तक आते-आते 14.43 पहुँच गयी। इसमें लगभग 2 करोड़ भूमिहीन मज़दूर अकेले उत्तर प्रदेश से हैं। ग़ौरतलब है कि किसानों की क़र्ज़-माफ़ी के शोरगुल में इस विशाल ग्रामीण सर्वहारा वर्ग की आवाज़ मानो दबा दी जाती है। इस भूमिहीन मज़दूर आबादी की भी अच्छी-ख़ासी संख्या क़र्ज़ के बोझ तले दबी रहती है। लेकिन उनके क़र्ज़-माफ़ी की बातें भूले-भटके भी नहीं की जाती। यही नहीं, अक्सर इस बात को दृष्टिओझल कर दिया जाता है कि किसानों की क़र्ज़-माफ़ी से सरकार को पड़ने वाला अतिरिक्त आर्थिक बोझ भी मुख्यत: गाँवों और शहरों की सर्वहारा आबादी को ही उठाना पड़ता है। उत्तर प्रदेश में किसानों की क़र्ज़-माफ़ी का बोझ भी मज़दूर वर्ग पर पड़ने वाला है। ग़ौरतलब है कि केन्द्र सरकार द्वारा क़र्ज़-माफ़ी के लिए आर्थिक मदद करने से मना करने के बाद क़र्ज़-माफ़ी के लिए मुद्रा जुटाने के लिए योगी सरकार ने किसान राहत बॉण्ड जारी करने का फ़ैसला किया है। ज़ाहिर है कि उत्तर प्रदेश सरकार के राजस्व के 8 प्रतिशत से भी अधिक क़ीमत के इन बॉण्डों की सूद सहित भरपाई मज़दूर वर्ग को करनी पड़ेगी, क्योंकि इसके लिए जो अतिरिक्त कर लगाना होगा, उसका बोझ मुख्यत: मज़दूरों पर ही पड़ेगा। उत्तर प्रदेश में क़र्ज़-माफ़ी के बाद पंजाब और महाराष्ट्र जैसे संकटग्रस्त राज्यों में भी क़र्ज़-माफ़ी की क़वायद तेज़ हो गयी है। तमिलनाडु के उच्च न्यायालय ने भी राज्य के सभी किसानों के लिए क़र्ज़-माफ़ी की योजना लागू करने का आदेश दिया है। कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसी योजनाओं से किसानों की ज़िन्दगी की तकलीफ़ें तो कम नहीं होने वाली, हाँ इनके फलस्वरूप आने वाले दिनों में मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता के ऊपर महँगाई की मार ज़रूर तेज़ पड़ने वाली है।

– आनन्द सिंह

बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाईयाँ

• पूरी दुनिया में कम से कम 12.3 मिलियन लोगों से बँधुआ मज़दूरी करायी जाती है।

• हर साल पूरी दुनिया में 20 लाख लोग काम के दौरान दुर्घटनाओं या पेशागत रोगों के कारण मारे जाते हैं।

• दुनिया की केवल 20 प्रतिशत आबादी को उचित सामाजिक सुरक्षा प्राप्त है और आधी से अधिक आबादी को कोई सुरक्षा नहीं है।

• मौजूदा समय में पूरी दुनिया में 20 करोड़ से अधिक बच्चे बाल मज़दूरी कर रहे हैं, जो उनके मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक विकास को नुक़सान पहुँचा रहा है।

• भारत में औसत आयु चीन के मुक़ाबले 7 वर्ष और श्रीलंका के मुक़ाबले 11 वर्ष कम है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर चीन के मुक़ाबले तीन गुना, श्रीलंका के मुक़ाबले लगभग 6 गुना और यहाँ तक कि बांग्लादेश और नेपाल से भी ज़्यादा है। भारतीय बच्चों में से तक़रीबन आधों का वज़न ज़रूरत से कम है और वे कुपोषण से ग्रस्त हैं। क़रीब 60 फ़ीसदी बच्चे ख़ून की कमी से ग्रस्त हैं और 74 फ़ीसदी नवजातों में ख़ून की कमी होती है। प्रतिदिन लगभग 9 हज़ार भारतीय बच्चे भूख, कुपोषण और कुपोषणजनित बीमारियों से मरते हैं। 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मौत के 50 फ़ीसदी मामलों का कारण कुपोषण होता है। 5 वर्ष से कम आयु के 5 करोड़ भारतीय बच्चे गम्भीर कुपोषण के शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, 63 फ़ीसदी भारतीय बच्चे प्रायः भूखे सोते हैं और 60 फ़ीसदी कुपोषणग्रस्त होते हैं। 23 फ़ीसदी बच्चे जन्म से कमज़ोर और बीमार होते हैं। एक हज़ार नवजात शिशुओं में से 60 एक वर्ष के भीतर मर जाते हैं। लगभग दस करोड़ बच्चे होटलों में प्लेटें धोने, मूँगफली बेचने आदि का काम करते हैं।

• भारत की वित्तीय राजधानी मुम्बई में, 60 प्रतिशत से अधिक आबादी झुग्गी-झोंपड़ियों में रहती है। जहाँ वे अमानवीय स्थितियों में रहती हैं और स्वास्थ्य की स्थिति ग्रामीण क्षत्रों के जैसी है।

• मुम्बई के 40 प्रतिशत बच्चों का वज़न सामान्य से कम है, यानी उन्हें पर्याप्त पोषण नहीं मिलता।

• दुनिया में प्रति व्यक्ति, प्रति दिन 2 अमेरिकी डॉलर (120 रुपये) से कम पर गुज़ारा करने वालों की संख्या बढ़कर एक अरब से अधिक, या दुनिया में रोज़गार प्राप्त लोगों की संख्या का 45 प्रतिशत हो जायेगी।

• जहाँ विकसित देशों के लोग औसतन अपनी कुल आमदनी का 10 से 20 फ़ीसदी भोजन पर ख़र्च करते हैं, वहीं भारत के लोग अपनी कुल कमाई का औसतन क़रीब 55 फ़ीसदी हिस्सा भोजन पर ख़र्च करते हैं। लेकिन कम आय वर्ग के भारतीय नागरिक अपनी आमदनी का 70 प्रतिशत भाग भोजन पर ख़र्च करते हैं, और फिर भी उन्हें दो न तो भरपेट भोजन मिलता है, न ही पोषणयुक्त भोजन। औसतन एक आदमी को प्रतिदिन 50 ग्राम दाल चाहिए, लेकिन भारत की नीचे की 30 फ़ीसदी आबादी को औसतन 13 ग्राम ही नसीब हो पाता है। प्रोटीन का दूसरा बड़ा स्रोत, यानी मांस उनकी पहुँच से बाहर कर दिया गया है।

• भूखे लोगों की सबसे बड़ी संख्या भारत में रहती है। कुपोषण के मामले में भी भारत दुनिया में सबसे आगे है।

• जहाँ दुनिया के बहुतेरे देशों से टीबी की बीमारी समाप्त हो चुकी है वहीं भारत टीबी और कई अन्य बीमारियों में नम्बर एक पर है। मलेरिया से सबसे ज़्यादा मरने वालों की संख्या के लिहाज़ से दुनिया में इसका तीसरा स्थान है।

• भारत में प्रति हज़ार आबादी पर एक डॉक्टर के वैश्विक पैमाने पर पहुँचने के लिए अभी पाँच लाख डॉक्टरों की भरती करनी पड़ेगी। यानी माना जा सकता है कि इसकी दूर-दूर तक कोई सम्भावना नहीं है। इस मामले में भारत की स्थिति पाकिस्तान और बंगलादेश जैसे देशों से भी बदतर है।

• भारत में सबसे ज़्यादा ऐसे लोग रहते हैं जिन्हें पीने के लिए साफ़ पानी भी नहीं मिलता।

• दुनिया में निरक्षरों की सबसे बड़ी संख्या भी भारत में ही है।

भारतीय रेल : वर्ग-समाज का चलता-फिरता आईना

अंग्रेज़ों ने औपनिवेशिक भारत में 1853 में पहली बार अपनी सेना के आवागमन के लिए रेलवे की शुरुआत की थी और कालान्तर में इसका प्रयोग अपने वाणिज्यिक हितों को साधने के लिए भी किया था। और स्वाभाविक ही अपनी साम्राज्यवादी कारगुज़ारियों पर पर्दे डालने के लिए आम जनता के यातायात के लिए भी इसका प्रयोग करने दिया गया था। और उसी समय से आम भारतीयों के लिए अलग क़िस्म के डिब्बे और अंग्रेज़ों और उनके तलवे चाटने वाले भारतीय राजे-रजवाड़ों और ज़मींदारों के लिए अलग तरह के डिब्बे थे। फिर 1947 आया और देश आज़ाद हुआ। देश की आम मेहनतकश जनता में अपने सुनहरे भविष्य को लेकर एक उम्मीद जगी। नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस सत्ता में आयी और रेलवे का राष्ट्रीयकरण कर दिया और कोयला, स्टील जैसे तमाम भारी उद्योग जनता के ख़ून-पसीने के दम पर खड़े किये गये। मगर तब से अब तक बीते 70 सालों के रिकॉर्ड को देखकर कोई भी सयाना इन्सान शायद इस मुगालते में तो नहीं होगा कि कीन्सियाई नुस्खों को अपनाकर तथाकथित 'नेहरूवादी समाजवाद' के नाम पर कांग्रेसियों ने देश की जनता को जमकर चूना लगाया है। वैसे तो धीरे-धीरे सारी सरकारी कम्पनियाँ प्राइवेट हाथों में बेची जा रही हैं, मगर रेलवे में अभी तक इसकी बस गुपचुप तरीक़े से शुरुआत भर की गयी है। तो इससे पहले रेलवे का भी पूरी तरह निजीकरण हो जाये, आइए समझने की कोशिश करते हैं कि राज्य संचालित रेलवे होने से क्या आम मेहनतकश आबादी को कोई ख़ास फ़ायदा पहुँच रहा है क्या? यानी इसे बचे-खुचे 'समाजवाद' को भी थोड़ा टटोलकर देख ही लेते हैं।

समाजवाद का जो मतलब हम समझते हैं, उसमें तो समाजवादी निज़ाम यथासम्भव तेज़ी से समाज में मौजूद वर्गों के विभिन्न संस्तरों के ख़ात्मे की तरफ़ बढ़ती है और इसके लिए उत्पादन व्यवस्था से लेकर सांस्कृतिक क्षेत्र में मौजूद वर्ग-समाज की अभिव्यक्तियों के ख़िलाफ़ कड़े से कड़े फ़ैसले लागू करती है। पर भारतीय रेल में भी क्या ऐसी कोई कोशिश की गयी है? हममें से लगभग हर किसी ने रेल यात्रा तो की ही है और उसके स्वरुप से भी भलीभाँति परिचित हैं। तो आपने कभी क्या सोचा है कि आज़ादी के 70 सालों बाद आज भी रेल में जनरल, शयनयान (स्लीपर) और वातानुकूलित (एयरकण्डिशण्ड) डिब्बों का वर्गीकरण क्यों मौजूद हैं? अभी भी भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या ट्रेनों के जनरल डिब्बों में भेड़-बकरियों की तरह चलने के लिए क्यों मजबूर है? ट्रेन के सभी डिब्बों को वातानुकूलित क्यों नहीं किया जाता, जिससे समाज का आम आदमी भी आराम से यात्रा कर सके?

आँकड़ों की जुबानी

क्या आप जानते हैं कि वित्तीय वर्ष 2013-2014 में पूरे वर्ष के दौरान ट्रेन में सफ़र करने वाले यात्रियों की कुल संख्या 8.4 अरब थी और इनमें 7.7 अरब लोगों ने यानी तक़रीबन 92 प्रतिशत लोगों ने ट्रेन के दूसरे दर्जे (सेकण्ड क्लास) यानी कि जनरल डिब्बों में ही सफ़र किया। शयनयान श्रेणी की हालत भी वैश्विक पैमानों के हिसाब से निहायत ही घटिया है, मगर उनमें भी यात्रा करने वाले कुल यात्रियों की संख्या अरबों में नहीं बल्कि मात्र 58 करोड़ थी।

ये जनरल डिब्बों में भेड़-बकरियों की तरह चलने वाले 92 प्रतिशत लोग कौन हैं? असल में भारत में लगभग 93 प्रतिशत लोगों के यहाँ उनके परिवार के कुल सदस्यों के द्वारा कमाई जाने वाली राशि 10000 रुपये से भी कम है, जबकि हर परिवार में औसतन 5 लोग रहते हैं। ये 93 प्रतिशत लोग छोटे-मँझोले किसान, खेतिहर मज़दूर, रिक्शेवाले, दिहाड़ी पर काम करने वाले शहरी मज़दूर इत्यादि हैं जिनके दम पर आज भारत तथाकथित विकास की राह पर तेज़ी से आगे बढ़ रहा है, जिनके दम पर ट्रेनों के वातानुकूलित डिब्बों के शीशों को चमकाया जा रहा है, मगर जो ख़ुद शौचालय जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की निहायत ही घटिया हालतों वाले डिब्बों में चलने के लिए मजबूर हैं। यहाँ तक कि लम्बी दूरी वाली ट्रेनों में तो शौचालय में ही 5 से 7 लोग भरे होते हैं, इस पूरे समाज का अपने ख़ून-पसीने से निर्माण करने वाली मेहनतकश अवाम के आत्मसम्मान पर भला इससे बड़ा आघात और क्या हो सकता है?

आइए अब ये समझने की कोशिश करते हैं कि ऐसा होता क्यों है? इस सवाल का सबसे आसान जवाब है पैसा! जिसके पास जितना पैसा है यानी जिसकी जितनी 'औक़ात' है, वो उसी हिसाब से जनरल, शयनयान या वातानुकूलित डिब्बे में चल सकता है। मगर अगला सवाल आता है, कि ऐसा क्यों है कि हममें से किसी की कम और किसी की ज़्यादा 'औक़ात' है? इसका जवाब है - पूँजीवाद! हम एक ऐसी अर्थव्यवस्था में रहते हैं जिसमें सूई से लेकर जहाज़ बनाने वाली जनता ख़ुद तो गन्दी बस्तियों में और रेल के गन्दे जनरल डिब्बों में चलने के लिए अभिशप्त है, वहीं दूसरी ओर धनपशु जिनका कुल काम है मज़दूरों को जानवरों की तरह हाँकते रहना, वे अपने आलीशान फ़ार्म हाउस में रहते हैं और पहले दर्जे के वातनुकूलित डिब्बों और हवाई जहाज़ में सफ़र करते हैं। एक ओर तो इन परजीवी धनपशुओं की जमातों और उनके मध्यम और उच्च-मध्यमवर्गीय पिछलग्गुओं के लिए दूरन्तो, शताब्दी और राजधानी जैसी स्पेशल ट्रेनें चलायी जाती हैं जिसमें कोई मज़दूर कभी बैठने के बारे में सोच भी नहीं सकता, दूसरी ओर जनरल डिब्बों में जानवरों की तरह लदकर जाने को बेबस आम लोग।

इसी बीच जब से मोदी सरकार आयी है, उन्होंने बुलेट ट्रेन चलाने की भी बात शुरू की है। इसके अन्तर्गत अहमदाबाद से मुम्बई के बीच 508 किमी लम्बी तेज़-रफ़्तार (संचालन गति 320 किमी प्रति घण्टा) वाली लाइन का निर्माण किया जाना है। जिसकी कुल लागत लगभग 1 लाख करोड़ रुपये होगी और उसमें से 0.1 प्रतिशत की ब्याज दर पर 79000 करोड़ रुपये जापान से लोन लेकर लगाये जायेंगे। इस प्रोजेक्ट के 2023 तक पूरा होने की उम्मीद है। अहमदाबाद से मुम्बई के बीच इस ट्रेन की सम्भावित टिकट दर 3300 रुपये के आसपास बतायी जा रही है। आपमें से कितने लोग 2023 में इस दर पर इस तरह की अत्याधुनिक तकनीक वाली ट्रेन का इस्तेमाल कर पायेंगे? स्पष्ट कर दें कि हम किसी भी क्षेत्र में आधुनिकतम तकनीक के प्रयोग के ख़िलाफ़ नहीं हैं। मगर सवाल करना हमारा मूलभूत हक़ है, इसलिए हम पूछेंगे कि ये बुलेट ट्रेन किसके लिए? ऐसा सम्भव क्यों नहीं है कि देश की मेहनत-मज़दूरी करके पेट पालने वाली आम जनता भी विज्ञान के करिश्मों से रूबरू हो सके? ज्ञान किसी की बपौती नहीं है, यह एक सामूहिक सम्पत्ति है और ऐतिहासिक रूप से इसकी जड़ें मानव श्रम में ही निहित हैं, मगर फिर भी आज के समाज में सर्वाधिक श्रम करने वाला ही सर्वाधिक ज़लालत में जीने को मजबूर है। ज़रा सोचिए, इस पूरी बुलेट ट्रेन की परियोजना को लागू करने में सबसे ज़्यादा हाड़तोड़ मेहनत करने वाले कौन होंगे? मज़दूर! और क्या वे ख़ुद कभी इसका प्रयोग कर पायेंगे? नहीं! सोचिए क्यों?

अभी तक तो हम बात कर रहे थे रेलवे में सफ़र करने वालों की। रेलवे में काम करने वालों के हालात भी कोई बहुत अच्छे नहीं हैं।

रेलवे में ठेके पर काम करने वालों के हालात

इस समय रेलवे में अनुमानित तौर पर 4 लाख से भी ज़्यादा लोग ठेका प्रथा पर काम कर रहे हैं। ठेके का काम मुख्यतः ट्रेनों, प्लेटफ़ॉर्म, रेलवे ट्रैक की सफ़ाई में दिया जाता है। इसके अलावा शयनयान श्रेणी वाले डिब्बों में बिस्तर से सम्बन्धित सामान जैसे चद्दर, कम्बल इत्यादि की सप्लाई, उनकी धुलाई एवं साफ़-सफ़ाई और रखरखाव में भी ज़्यादातर ठेके के मज़दूरों से काम लिया जाता है। इस तरह के काम में कभी-कभी बहुत कम सोने को मिलता है, और यात्रियों और ठेकेदारों द्वारा जो गलियाँ मिलती हैं, वो अलग से। हर यात्रा में सैकड़ों यात्रियों की सेवा में मात्र 4 से 6 अटेण्डेण्ट लगे होते हैं। उसमें भी यदि किसी की विवेक एक्सप्रेस (4236 किमी लम्बा रूट) या किसी और लम्बी दूरी की ट्रेन में ड्यूटी लग जाये, तो शिफ़्ट कई दिन तक चलती है।

ज़्यादातर संविदा कर्मचारी 20 से 30 साल के बीच हैं और इनकी मासिक आमदनी बमुश्किल 4 से 6 हज़ार रुपये तक होती है। ट्रेन में होने पर तो उन्हें खाना मिल जाता है, मगर हाल्ट होने पर उन्हें ख़ुद से इन्तज़ाम करना पड़ता है। यही नहीं, अगर कोई सामान खो जाये तो उसकी क़ीमत भी उन्हें ही चुकानी पड़ती है। एक कम्बल के लिए उन पर 850 रुपये का जुर्माना लगता है, चद्दर या तकिये के खोल के लिए 300 रुपये और चेहरा पोंछने वाली तौलिया के लिए 75 रुपये। इन कर्मचारियों को कोई चिकित्सा भत्ता नहीं मिलता है, और उन्हें कोई स्वास्थ्य बीमा भी नहीं मिलता है। एजेंसियाँ भर्ती के वक़्त मुफ़्त भोजन, मुफ़्त यात्रा और आसान काम का लालच देकर नयी भर्तियाँ कर तो लेती हैं, मगर सच्चाई इससे कोसों दूर होती है। चूँकि यात्री लगभग हर स्टेशन पर चढ़ते हैं, इसलिए अटेण्डेण्ट को पूरी यात्रा में जगना पड़ता है। उनके सोने के लिए कोई अलग से व्यवस्था नहीं होती, इसलिए या तो वे यान्त्रिकी टीम के साथ सोते हैं या शौचालय के पास बनी अलमारियों में ही सो जाते हैं। किसी यात्री के पैसे या सामान खो जाने का इल्ज़ाम भी अटेण्डेण्ट के सर ही आता है।

क्यों करती है सरकार संविदा पर भर्ती?

सातवें वेतन आयोग के द्वारा एकत्रित किये गये आँकड़ों के आधार पर भारत की केन्द्र सरकार ने 2012-2013 में 300 करोड़ रुपये संविदा या अस्थायी कर्मचारियों पर ख़र्च किए थे, जिसमें रेलवे मन्त्रालय का हिस्सा सबसे ज़्यादा था। इसी तरह राज्य सरकारें भी विभिन्न विभागों में धीरे-धीरे ज़्यादा से ज़्यादा काम ठेके पर देना शुरू कर चुकी है। असल में भारत में नव-उदारवादी नीतियों के आगमन के बाद से ये तो देर-सवेर होना ही था। टाटा-बिड़ला-अडानी-अम्बानी जैसे पूँजीपतियों के सैकड़ों-करोड़ों के चन्दे पर पलने वाली पार्टियों ने नेहरूवादी नक़ली समाजवाद के चोले को भी अब पूरी तरह से उतार फेंका है, और नंगे एवं बेशर्म तरीक़े से जनता के ख़ून-पसीने से खड़ी की गयी राज्य द्वारा संचालित कम्पनियों को भी धीरे-धीरे औने-पौने दामों पर प्राइवेट हाथों बेचकर पूँजीपतियों को मज़दूरों का ख़ून चूसने की खुली छूट दी जा रही है। रेलवे में चूँकि कुल 13 लाख़ कर्मचारियों में से 10 लाख़ से ज़्यादा अराजपत्रित यानी कि श्रेणी C या D में आते हैं, और इनमें से ज़्यादातर निजीकरण के विरोध में होंगे, अतः रेलवे को आसानी से प्राइवेट हाथों में बेचना सरकार के लिए आसान नहीं है, इसलिए बाक़ी कई सरकारी विभागों की तरह रेलवे ने अब नयी भर्तियाँ कम से कम करके ज़्यादा से ज़्यादा काम ठेके पर देना शुरू कर दिया है और बड़े ही गुपचुप तरीक़े से धीरे-धीरे रेलवे के निजीकरण की शुरुआत की है।

नव-उदारवाद का तर्क ही यही है कि सरकार का हस्तक्षेप हर क्षेत्र में कम से कम किया जाये और उत्पादन की दुनिया और उसे संचालित करने वाले क़ानूनों को ज़्यादा से ज़्यादा निजी हाथों में दे दिया जाये। इसलिए पब्लिक सेक्टर की कम्पनियों को बेचा जाना या रेलवे और तमाम अन्य विभागों में बड़े पैमाने पर ठेके पर काम दिया जाना कहीं से भी अप्रत्याशित नहीं है। इसलिए आप भी अगर इस मुगालते में हैं कि किसी विभाग के 'सरकारी' बने रहने से आम जनता को कोई ख़ास लाभ मिलने वाला है तो हम कहेंगे कि आप जितनी जल्दी इस मुगालते को दूर कर लें, उतना ही अच्छा! पूँजीवादी निज़ामों के अन्दर भी कुछ राज्य संचालित कम्पनियाँ हो सकती हैं, मगर वो समाजवाद नहीं 'राज्य पूँजीवाद' होता है।

बहरहाल, आज अपने आस-पास जितनी भी समस्याएँ देख रहे हैं उनमें कुछ भी अप्रत्याशित नहीं है। मज़दूर और मेहनतकश कारख़ानों से लेकर अपनी बस्तियों में पशुवत जीवन जीने को विवश हैं, तब इसमें क्या अचरज की बात है कि उनके साथ रेल विभाग भी जानवरों जैसा बर्ताव करता है। इसलिए साथियो, यदि आप इतना समझ पा रहे हैं कि कैसे मुट्ठी भर धनिकों की अय्याशियों के लिए करोड़ों बहुसंख्यक जनसंख्या खटमल की तरह रोज़ाना पिस रही है और उसके समाधान की दिशा खोज रही है तो वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को लेकर किसी मुगालते में न रहें, दो-चार राहतें-रियायतें इसी व्यवस्था की चौहद्दी के अन्दर भी यदि कोई आपको दिला सकता है तो वो मेहनतकशों की एक क्रान्तिकारी पार्टी ही कर सकती है। आख़िरी और मुक़म्मल इलाज तो बस एक ही है - मज़दूर क्रान्ति!

– शिशिर गुप्ता

रेलवे का किश्तों में और गुपचुप निजीकरण जारी

– विजय प्रकाश सिंह

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली केन्द्र की भाजपा सरकार ने भारतीय रेल के निजीकरण का मन बना लिया है और क्रमिक ढंग से यह सिलसिला चालू भी कर दिया है। अभी हाल ही में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से लगे जुड़वा शहर हबीबगंज का रेल स्टेशन म.प्र. की निजी कम्पनी बंसल पाथवे के हवाले कर दिया गया है। यह कम्पनी न सिर्फ़ इस स्टेशन का संचालन करेगी बल्कि रेलगाड़ियों के आवागमन का भी नियन्त्रण करेगी। जुलाई 2016 में कम्पनी के साथ किये गये क़रार के अन्तर्गत कम्पनी हवाई अड्डों के तर्ज पर रेलवे स्टेशन की इमारत का निर्माण करेगी और स्टेशन की पार्किंग, खान-पान सब उसके अधीन होगा और उससे होने वाली आमदनी भी उसकी होगी।

इस स्टेशन के निजीकरण से रेल विभाग को सालाना दो करोड़ रुपये के राजस्व का नुक़सान होगा। मगर रेल विभाग के इस क़दम को सरकार और उसका चाटुकार मीडिया विकास के प्रतीक के रूप में पेश करने की भरपूर कोशिश कर रहा है।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने नवम्बर 2016 में गुवाहाटी में पूर्वोत्तर राज्यों तक जाने वाली पहली ट्रेन को हरी झण्डी दिखाकर उसका लोकार्पण करते हुए स्पष्ट रूप से इसका इशारा किया था। उन्होंने रेल स्टेशनों के निजीकरण की वकालत करते हुए कहा था कि शुरुआती चरण में 10-12 स्टेशनों का आधुनिकीकरण और व्यवसायीकरण किया जायेगा। इससे पहले नीति आयोग के सदस्य बिबेक देबरॉय की अध्यक्षता वाले एक सरकारी पैनल ने रेलवे के संचालन और मेंटेनेंस के लिए प्राइवेट कंपनियों को लाये जाने की बात कही थी।

नरेन्द्र मोदी का कहना है कि अचल सम्पत्तियों की असमान छूती महँगाई के इस दौर में भारतीय रेल को अपनी भूसम्पत्ति और अपनी अवसंरचना का लाभ उठाना चाहिए और आरामदेह होटल और रेस्तराँ जैसी दूसरी सुविधाओं के विकास के लिए उन्हें निजी पक्षों के हवाले करना चाहिए। उन्होंने अपने भाषण में यहाँ तक कहा था कि रेल स्टेशनों के आधुनिकीकरण के लिए शतप्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की नीति पहले से ही मौजूद है। कहने का आशय यह कि सिलसिलेवार ढंग से देशभर के रेल स्टेशन देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हवाले करने का पूरा इन्तज़ाम कर लिया गया है।

महज़ रेल स्टेशनों के ही नहीं बल्कि समूची रेल प्रणाली के निजीकरण की प्रक्रिया पर अमल जारी है। रेल बजट को रद्द करके उसे आम बजट का हिस्सा बनाने के पीछे का कुचक्र रेल विभाग की आर्थिक, वित्तीय स्वायत्तता छीनने के लिए ही रचा गया है। रेल स्टेशनों के निजीकरण की मंशा भाजपा सरकार के मुखिया ने कम-से-कम सार्वजनिक तो की लेकिन गुपचुप तरीक़े से भारतीय रेल प्रणाली को देशी-विदेशी पूँजी के हवाले करने का काम लम्बे अरसे से किया जा रहा है।

मुम्बई से प्रकाशित एक राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक ने महीनों पहले एक ख़बर छापकर बताया था कि भारतीय रेल के प्रशासनिक कामकाज का प्रचालन टाटा समूह को सौंप दिया गया है और प्रशासनिक कार्यों में लापरवाही, ढिलाई बरतने या निष्पादन ख़राब पाये जाने पर मण्डल रेल प्रबन्धक (डीआरएम) तक के ख़िलाफ़ अनुशासनिक और दण्डात्मक कार्रवाई करने का अधिकार टाटा के अधिकारियों को प्रदान किया गया है। उस ख़बर में बताया गया है कि ख़राब निष्पादन के लिए टाटा ने इटारसी और भोपाल मण्डल के मण्डल प्रबन्धकों को निलम्बित कर दिया है। इसका क्या अर्थ निकलता है, इसे समझना किसी के लिए कठिन काम नहीं है। इसी तरह रेल यातायात और परिवहन प्रचालन के कई काम मोदी सरकार ने अपने दो सबसे चहेते उद्योगपतियों अम्बानी और अडानी के हवाले कर दिये हैं।

एयर इण्डिया, इण्डियन एयरलाइंस, सेल, भेल, आईटीपीसी, कोल इण्डिया, बीएसएनएल और ओएनजीसी के विनिवेश का नतीजा हम देख चुके हैं। अभी दस-बारह साल पहले बिड़ला-अम्बानी जैसे औद्योगिक समूह दूरसंचार के कारोबार में हिस्सेदारी के लिए आपस में होड़ लगा रहे थे और रिलायंस ने डब्लूएलएल (वायरलेस इन लोकल लूप) के ज़रिये लोकल और एसटीडी दूरसंचार सेवाएँ शुरू की थीं और बीएसएनएल जो इस देश का दूरसंचार का पितृ संस्थान था और सारे प्रतिस्पर्धियों को स्पेक्ट्रम बेच रहा था आज इस हालत में पहुँच गया है कि उसकी अपनी फ़ोन और इण्टरनेट सेवाएँ रिलायंस के स्पेक्ट्रम पर चला करेंगी।

यही हाल, ओएनजीसी का भी है। अम्बानी के चहेते प्रधानमन्त्री ने ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि ओएनजीसी के लिए अपना कारोबार चला पाना मुश्किल हो जायेगा क्योंकि डीज़ल के उसके सबसे बड़े ग्राहक भारतीय रेल को डीज़ल आपूर्ति अब रिलायंस करने वाली है। ओएनजीसी के तेल क्षेत्र से रिलायंस द्वारा माहवार अरबों की गैस चोरी किसी से छिपी नहीं है। इस देश के प्रभु वर्गों को हवाई यात्रा की सुविधा मुहैया करने के लिए भारतीय राज्य ने इण्डियन एयरलाइंस और एयर इण्डिया नामी जो निकाय सार्वजनिक धन से खड़े किये थे, उनको सिलसिलेवार ढंग से सफ़ेद हाथी साबित करके पहले ही पूँजीपतियों के हवाले किया जा चुका है।

भारतीय रेल देश का सबसे बड़ा सार्वजनिक उपक्रम ही नहीं बल्कि संगठित क्षेत्र का सबसे बड़ा नियोक्ता भी है। भारतीय रेल 13 लाख लोगों को रोज़गार देता है (हालाँकि कुछ वर्ष पहले रेल कर्मचारियों की संख्या 18 करोड़ थी)। रेल बोर्ड के चेयरमैन के अनुसार भारतीय रेल देश के कुल रोज़गार का 6 प्रतिशत रोज़गार मुहैया कराती है और अपनी अन्य आश्रित संस्थाओं की मार्फ़त वह 2.5% अतिरिक्त रोज़गार का भी सृजन करता है। देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में उसका योगदान एक प्रतिशत का है। यानी देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद के हर सौ रुपये में से एक रुपया भारतीय रेल से आता है।

बोगाई और चौधरी (2013) ने 'विकास के अभियन्ता : उत्पादकता की प्रगति' शीर्षक अपनी रिपोर्ट में कहा है कि 2013 में भारतीय रेल की विकास दर विकसित और विकासशील देशों में सबसे अधिक रही है। अपनी तमाम अव्यवस्थाओं, लेटलतीफ़ियों के साथ भारतीय रेल दुनिया में सबसे सस्ता माल और यात्री परिवहन सेवा उपलब्ध कराती है। अपने 105,000 किमी लम्बे संजाल के साथ भारतीय हर दिन 2 करोड़ यात्री और 28 लाख टन माल ढोती है जबकि अमरीका जैसे विकसित देश की रेल प्रणाली एमट्रैक सालान तीन करोड़ यात्री ढोती है और अमरीका की समूची वायु परिवहन प्रणाली कुल मिलाकर रोज़ाना 10 लाख यात्री ढोती है।

भारतीय जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये इस विशाल उपक्रम का भरपूर फ़ायदा पहले अंग्रेज़ों ने और फिर देशी पूँजीपतियों ने उठाया। रेलवे उनके मालों की सस्ती ढुलाई और उनके दफ़्तरों-कारख़ानों में काम करने वाले लोगों को लाने-ले जाने की सस्ती सवारी मुहैया कराता रहा और वह भी जनता के टैक्सों के दम पर। अब इसे भी कमाई का ज़रिया बनाने के लिए पूँजीपतियों की जीभ लपलपा रही है और पिछले दो दशकों से इसे टुकड़े-टुकड़े में निजी हाथों में देने का सिलसिला जारी है।

देश की ज़मीनी सम्पत्ति का बडा हिस्सा रेल विभाग के नियन्त्रण में हैं ऊपर से भारतीय रेलों के माध्यम से लोगों की भारी आवाजाही देश के लाखों लोगों को आजीविका के अवसर देती है। स्टेशनों पर और उनके आस-पास खाने-पीने की चीज़ों की रेहड़ी-ठेले लगाकर लाखों परिवार अपनी आजीविका कमाते हैं। स्टेशनों को पूँजीपतियों के हवाले करने से उनकी आजीविका छिनेगी और बेकारों की फ़ौज में बढ़ोत्तरी होगी। 'कॉमसम' जैसी कम्पनियों को बड़े स्टेशनों पर खाने-पीने का ठेका देकर आम लोगों को सस्ते में खाना मुहैया कराने वाले बहुतेरे ढाबे आदि तो पहले ही बन्द कराये जा चुके हैं।

रेल विभाग भारत सरकार का सबसे कमाऊ विभाग है। वित्त वर्ष 2015-16 में उसकी आय 1.68 लाख करोड़ थी। रेल बजट को रद्द करके मोदी सरकार ने ऐसा इन्तज़ाम किया है जिससे उसकी वित्तीय स्वायत्तता छिन जायेगी और वह भी दूसरे विभागों की तरह बजटीय प्रबन्धन अधिनियम और अन्य नियामक यान्त्रिकियों से संचालित होने लगेगा। उसे पूँजीपतियों के हित में तोड़ना-मरोड़ना सरकार के लिए ज़्यादा आसान हो जायेगा।

नीति आयोग अपने गठन के समय से ही भारतीय रेल के पीछे पड़ा हुआ है। इसका अन्दाज़ा रेल विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों से तैयार करायी नीति आयोग की "सामाजिक सेवा दायित्व के प्रभाव की समीक्षा" शीर्षक रिपोर्ट से लग जाता है। उस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीय रेल को अपने यात्री परिवहन व्यापार से लगातार घाटा होता आया है। अतीत में ऐसे तर्क दिये जाते रहे हैं कि यात्री परिवहन व्यापार के प्रति रेलवे के कल्याणकारी रुझान से उसके कारोबार पर बुरा असर पड़ता है। नीति आयोग इसी तर्क को हवा दे रहा है।

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के प्रभाव में शिक्षा-स्वास्थ्य-बिजली-पानी-परिवहन जैसी बुनियादी सुविधाओं से सब्सिडी ख़त्म करके उन्हें पूरी तरह बाज़ार और मुनाफ़े की शक्तियों के हवाले किया जा रहा है। अब देशी-विदेशी पूँजीपतियों की गिद्धदृष्टि भारतीय रेल पर लगी है और उनका चाकर प्रधानमन्त्री अपने पूँजीपति आकाओं की इच्छापूर्ति करने के लिए कमर कसकर तैयार है। कहने की ज़रूरत नहीं कि निजीकरण के साथ ही रेलवे में ठेकाकरण और मज़दूरों-कर्मचारियों के शोषण में और बढ़ोत्तरी होगी। रेलवे के कई बड़े वर्कशॉप बन्द हो चुके हैं, नई भर्तियाँ नहीं के बराबर हैं और किस्तों में छँटनी जारी है। मगर रेलवे की सारी बड़ी-बड़ी यूनियनों के नेता अफ़सरों से मिलने वाली मोटी मलाई खाकर मस्त पड़े हैं।

मारुति-सुजुकी के बेगुनाह मज़दूरों को उम्रक़ैद व अन्य सज़ाओं के ख़िलाफ़ लुधियाना में ज़ोरदार प्रदर्शन

संघर्षशील मज़दूरों की नाजायज़ सज़ाएँ तुरन्त रद्द करने की माँग

4 और 5 अप्रैल को मारुति-सुजुकी के 13 नेताओं को उम्रक़ैद की सज़ा देने के ख़िलाफ़ और सभी मज़दूरों को बिना शर्त रिहा करवाने, सभी मज़दूरों को काम पर वापिस लेने, जेलों में नाजायज़ बन्द रखने के लिए मुआवज़ा, ठेकेदारी व्यवस्था बन्द करवाने आदि माँगों के तहत देशव्यापी प्रदर्शनों का आह्वान किया गया था। इसके तहत लुधियाना में 5 अप्रैल को मज़दूर, मुलाजिम, नौजवान, छात्र, जनवादी संगठनों द्वारा सैकड़ों की संख्या में एकजुट होकर रोष प्रदर्शन किया। डीसी कार्यालय पर भारत के राष्ट्रपति के नाम माँगपत्र सौंपा गया।

विभिन्न संगठनों की सभा को सम्बोधित करते हुए विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि एक बहुत बड़ी साज़िश के तहत क़त्ल, इरादा क़त्ल जैसे पूरी तरह झूठे केसों में फँसाकर पहले तो 148 मज़दूरों को चार वर्ष से अधिक समय तक, बिना ज़मानत दिये, जेल में बन्द रखा गया और अब गुड़गाँव की अदालत ने नाजायज़ ढंग से 13 मज़दूरों को उम्रक़ैद और चार को 5-5 वर्ष की क़ैद की कठोर सज़ा सुनाई है। 14 अन्य मज़दूरों को चार-चार साल की सज़ा सुनाई गयी है लेकिन चूँकि वे पहले ही लगभग साढ़े चार वर्ष जेल में रह चुके हैं इसलिए उन्हें रिहा कर दिया गया है। 117 मज़दूरों को, जिन्हें बाक़ी मज़दूरों के साथ इतने सालों तक जेलों में ठूँसकर रखा गया, उन्हें बरी करना पड़ा है। सबूत तो बाक़ी मज़दूरों के ख़िलाफ़ भी नहीं है लेकिन फिर भी उन्हें जेल में बन्द रखने का बर्बर हुक्म सुनाया गया है।

वक्ताओं ने कहा कि यह फ़ैसला पूरी तरफ़ बेइंसाफ़ी भरा है। बहुत सारे तथ्य स्पष्ट तौर पर मज़दूरों का बेगुनाह होना साबित कर रहे थे, लेकिन इन्हें अदालत ने नज़रअन्दाज कर मज़दूरों को ही दोषी क़रार दे दिया क्योंकि पूँजी निवेश को बढ़ावा जो देना है! वास्तव में मारुति-सुजुकी घटनाक्रम के ज़रिये लुटेरे हुक्मरानों ने ऐलान किया है जो भी आवाज़ लूट-शोषण के खिलाफ़ उठेगी वो कुचल दी जायेगी।

वक्ताओं ने कहा कि आज देसी-विदेशी कम्पनियों के हितों में श्रम क़ानूनों में संशोधनों, काले क़ानून बनाने, संघर्षशील लोगों की आवाज़ कुचलने, जनवादी अधिकार छीनने जैसी नीतियों को भारतीय हुक्मरान धड़ाधड़ अंजाम दे रहे हैं। जनपक्षधर बुद्धिजीवियों, पत्रकारों, कलाकारों तक का दमन हो रहा है, उन्हें जेलों में ठूँसा जा रहा है। जनएकजुटता को तोड़ने के लिए धर्म, जाति, क्षेत्र के नाम पर बाँटने की साज़िशें पहले किसी भी समय से कहीं अधिक तेज़ हो चुकी हैं। जहाँ जनता को बाँटा न जा सके, जहाँ लोगों का ध्यान असल मुद्दों से भटकाया न जा सके, वहाँ जेल, लाठी, गोली से कुचला जा रहा है। यही मारुति-सुजुकी मज़दूरों के साथ हुआ है। लेकिन ज़ुल्मो-सितम से न कभी जनआवाज़ दबाई जा सकी है, न कभी दबाई जा सकेगी।

प्रदर्शन को टेक्सटाईल-हौज़री कामगार यूनियन के नेता राजविन्दर, नौजवान भारत सभा के नेता ऋषि, मोल्डर एण्ड स्टील वर्क़र्ज़ यूनियनों के नेता हरजिन्दर सिंह और विजय नारायण, मज़दूर संघर्ष अभियान के कंवलजीत खन्ना, जनवादी अधिकार सभा के नेता हरप्रीत सिंह जीरख, पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन के नेता कर्मजीत, ठेका मुलाजिम संघर्ष मोर्चा के नेता कुलदीप सिंह बुच्चोवाल सहित सीटू, ऐटक, कामागाटामारू यादगारी कमेटी के नेताओं ने सम्बोधित किया। स्त्री मज़दूर संगठन की नेता बलजीत, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेता गुरजीत (समर), पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल) के नेता सुखदेव भूँदड़ी, जनसंघर्ष मंच (हरियाणा) की नेता कविता आदि ने साथियों सहित प्रदर्शन में शामिल होकर मारुति-सुजुकी मज़दूरों के अधिकारपूर्ण संघर्ष का समर्थन किया।

– बिगुल संवाददाता

भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु की याद में क्रान्तिकारी सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन

सैकड़ों लोगों ने दी महान क्रान्तिकारी शहीदों को भावभीनी श्रद्धांजलि

बीते 26 मार्च को लुधियाना में मज़दूर पुस्तकालय, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी (ताजपुर रोड) पर शहीद भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु की याद में, शहादत की 86वीं वर्षगाँठ को समर्पित क्रान्तिकारी सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम कारख़ाना मज़दूर यूनियन, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, स्त्री मज़दूर संगठन व नौजवान भारत सभा द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित किया गया। संगठनों द्वारा शहादत दिवस के सम्बन्ध में लुधियाना की मज़दूर आबादी में एक सप्ताह तक सघन प्रचार अभियान चलाया गया था। व्यापक पर्चा वितरण, नुक्कड़ नाटकों की पेशकारी और नुक्कड़ सभाओं आदि माध्यमों के ज़रिये लोगों तक क्रान्तिकारी शहीदों का सन्देश पहुँचाया गया।

26 मार्च के कार्यक्रम की शुरुआत शहीदों की याद में दो मिनट के मौन से की गयी। इस अवसर पर 'इंकलाब ज़िन्दाबाद', 'इस समाज को बदल दो' और 'एक मज़दूर की मौत' नाटकों का मंचन किया गया। अनेकों क्रान्तिकारी-जुझारू गीत पेश किये गये। कार्यक्रम को लोगों ने ख़ूब सराहा। कारख़ाना मज़दूर यूनियन के राजविन्दर और स्त्री मज़दूर संगठन की बलजीत ने शहीदों के जीवन, विचारों और मौजूदा परिस्थितियों, चुनौतियों, कार्यभारों की चर्चा की। मंच संचालन टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के लखविन्दर ने किया।

वक्ताओं ने कहा कि शहीद भगतसिंह और उनके साथियों ने जिस शोषण रहित समाज के निर्माण के लिए ज़िन्दगी-भर संघर्ष संघर्ष किया और कुर्बानियाँ कीं, वह समाज नहीं बन सका है। उनकी लड़ाई सिर्फ़ लुटेरे अंग्रेज़ हुक्मरानों के खिलाफ़ नहीं थी, बल्कि हर तरह के शोषकों के खिलाफ़ थी, चाहे वे शोषक अंग्रेज़ हों, भारतीय हों और चाहे कोई ओर हो। भगतसिंह ने कहा था कि जब तक इंसान के हाथों इंसान की लूट ख़त्म नहीं होती यह जंग जारी रहेगी। अंग्रेज़ी गुलामी से मुक्ति का मीठा फल भारत के धन्नासेठों ने चखा है। मेहनतकश जनता तो आज भी लूट, शोषण, अन्याय की चक्की में पिस रही है। मज़दूरों को बिना श्रम अधिकारों के 12-14 घण्टे खटना पड़ता है। महिलाओं की हालत बद से बदतर हो चुकी है। नौजवान ग़रीबी-बेरोज़गारी की चक्की में पिस रहे हैं। भाजपा की मोदी सरकार कांग्रेस द्वारा शुरू की गयीं उदारीकरण-निजीकरण-भूमण्डलीकरण की नीतियों को और भी ज़ोर-शोर से लागू कर रही है। हिन्दुत्ववादी फासीवादी भाजपा का राज्यसभा में भी बहुमत हो गया है। श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी बदलावों तथा अन्य जन विरोधी क़ानून पारित करने की प्रक्रिया को अब और भी तेज़ी से आगे बढ़ाया जायेगा। लोगों के विचारों की अभिव्यक्ति की आज़ादी, खाने-पीने, पहनने, प्रेम करने, शादी करने आदि तमाम जनवादी अधिकारों पर बड़े हमले हो रहे हैं।

भगतसिंह ने जाति-धर्म के नाम पर लोगों को बाँटने की साज़िशों से देश के लोगों को आगाह किया था और वर्गीय एकता क़ायम करने पर ज़ोर दिया था।

वक्ताओं ने कहा कि क्रान्तिकारी शहीदों को रस्म अदायगी के तौर पर याद करने का कोई मतलब नहीं है। आज ज़रूरत है कि क्रान्तिकारी शहीदों के जीवन व विचारों को जन-जन तक पहुँचाया जाये, लोगों को मौजूदा समय की चुनौतियों से परिचित कराया जाये, संगठित किया जाये और इस तरह शहीदों के सपनों के समाज के निर्माण के लिए आगे बढ़ा जाये। यही क्रान्तिकारी शहीदों को एक सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव के शहादत दिवस पर मुम्बई व अहमदनगर में चला 15 दिवसीय शहीद यादगारी अभियान

भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव के शहादत दिवस के अवसर पर नौजवान भारत सभा द्वारा मुम्बई व अहमदनगर में 15 दिवसीय शहीद यादगारी अभियान चलाया गया। इस अभियान के अन्तर्गत हिन्दी व मराठी में हज़ारों पर्चे वितरित किये गये, विचार गोष्ठियाँ, पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की गयी व गौहर रज़ा की इंक़लाब डॉक्यूमेण्ट्री की स्क्रीनिंग भी की गयी। अन्तिम दिन यानी 3 अप्रैल को अहमदनगर के रहमत सुल्तान फ़ाउण्डेशन सभागृह में 'फासीवाद के मौजूदा दौर में भगतसिंह की प्रासंगिकता' विषय पर परिसंवाद रखा गया व साथ ही दो पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। परिसंवाद का मुख्य वक्तव्य कामगार बिगुल के सम्पादक सोमनाथ केंजळे ने रखा व उसके बाद सभी श्रोताओं ने भी परिसंवाद में भागीदारी की। भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के धार्मिक पुनरुत्थानवाद से वैज्ञानिक समाजवाद तक की यात्रा पर सोमनाथ ने विस्तृत बातचीत रखी। भगतसिंह के लिए स्वतन्त्रता के असली मायने क्या थे, राजनीतिक जीवन में धर्म के हस्तक्षेप के बारे में भगतसिंह क्या सोचते थे, अस्पृश्यता समस्या को किस तरह देखते थे व भारत की जनता के लिए किस तरह वो सिर्फ़ मज़दूर क्रान्ति का सपना देखते थे, इस पर सोमनाथ ने रोचक ढंग से प्रकाश डाला। उसके बाद फासीवाद के बारे में बात रखते हुए उन्होंने कहा कि यद्यपि भगतसिंह के समय में हिटलर व मुसोलिनी का बर्बर चेहरा पूरी तरह सामने नहीं आया था, पर फिर भी भगतसिंह समझते थे कि किस तरह जब पूँजीपति वर्ग जनता को लूटने में असहाय होने लगता है, तो वो लोगों को आपस में लड़वाता है। उन्होंने भगतसिंह के लेख 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' व 'धर्म व हमारा स्वतन्त्रता संग्राम' का सन्दर्भ देते हुए बताया कि भगतसिंह साम्प्रदायिक झगड़ों के पीछे के असली कारण यानी आर्थिक कारण को समझते थे और इसीलिए ऐसे झगड़ों का सामना करने के लिए वर्गीय एकता पर ज़ोर देते थे। उन्होंने अन्त में कहा कि आज के समय में नौजवानों को भगतसिंह के रास्ते को ही आगे बढ़ाना होगा, देश के मज़दूर वर्ग को एकजुट करके फासीवाद को मात देनी होगी, तभी भगतसिंह का इंक़लाब ज़िन्दाबाद का सपना साकार होगा।

इस मुख्य वक्तव्य के बाद कई अन्य श्रोताओं ने भी बातें रखीं और भगतसिंह के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने की बात पर बल दिया।

कार्यक्रम का दूसरा हिस्सा दो मराठी पुस्तिकाओं (कोळी व माशी - विल्हेल्म लिब्कनेख्त, तरुणांना आवाहन - पीटर क्रोपोतकिन) का लोकार्पण था। लोकार्पण की शुरुआत में जनचेतना के महाराष्ट्र प्रभारी नागेश धुर्वे ने वैकल्पिक मीडिया अभियान का परिचय दिया व दोनों पुस्तिकाओं के बारे में भी बताया। उन्होंने कहा कि आज पूँजीपति वर्ग अपने संचार माध्यमों से जनता पर लगातार वैचारिक हमला कर रहा है, परिवर्तन की किसी भी लड़ाई के प्रति लोगों को संशयकारी बना रहा है, घटिया दर्जे के नाटकों, फ़िल्मों, अख़बारों, टीवी चैनलों आदि के माध्यम से महिला विरोधी अपराधों को बढ़ावा दे रहा है। इसके बरक्स मज़दूर वर्ग को अपना वैकल्पिक मीडिया खड़ा करना होगा। जनचेतना एक ऐसा ही प्रयास है। जनचेतना हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी व मराठी भाषाओं के प्रगतिशील साहित्य का वितरण करती है। आने वाले समय में हमारा प्रयास रहेगा कि देश की हर भाषा में प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक व मानवीय मुल्यों के साहित्य को अपने सहयोगी प्रकाशन संस्थानों के सहयोग से पहुँचाया जा सके। जनचेतना का प्रयास रहेगा कि सिर्फ़ किताबें ही नहीं बल्कि वृत्तचित्रों, लघु फ़िल्मों व फ़िल्मों के माध्यम से भी मज़दूर वर्ग की आवाज़ को बुलन्द किया जा सके।

उन्होंने कहा कि 28 सितम्बर 2016 को शुरू हुआ ऐरण प्रकाशन भी जनचेतना का सहयोगी प्रकाशन संस्थान है। इसका उद्देश्य मराठी भाषा में क्रान्तिकारी व मार्क्सवादी साहित्य को प्रकाशित करना है। इस अवसर पर लोकार्पित की गयी दो छोटी पुस्तिकाओं का ऐतिहासिक महत्व भी उन्होंने बताया। उन्होंने बताया कि 'कोळी आणि माशी' नामक छोटी सी पुस्तिका दुनियाभर के मज़दूरों के बीच लोकप्रिय है, जो बताती है कि किस तरह पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग का शोषण करके अपनी अय्याशियों के महल खड़े करता है। यह पुस्तिका मज़दूर वर्ग को इस अन्याय के खिलाफ़ खड़े होने के लिए ललकारती है। उन्होंने बताया कि दूसरी पुस्तिका 'तरुणांना आवाहन' रूस के प्रसिद्ध अराजकतावादी क्रान्तिकारी प्रिंस पीटर क्रोपोतकिन द्वारा लिखी गयी थी। उनका यह प्रसिद्ध लेख अपने पेशों में शामिल होने के लिए तैयार युवकों-युवतियों को सम्बोधित था और सबसे पहले क्रोपोटकिन के अख़बार 'ला रिवोल्ट' में 1880 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद से दुनियाभर में एक पैम्फ़लेट के रूप में यह बार-बार छपता रहा है और आज भी इसकी अपील उतनी ही प्रभावी और झकझोर देने वाली है। इसके बाद दोनों पुस्तिकाओं का लोकार्पण शुभम व अलका माळी के हाथों किया गया। कार्यक्रम के दौरान कई क्रान्तिकारी गीत भी पेश किये गये। शहीद भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव जैसे तमाम शहीदों के सपनों को साकार करने के संकल्प के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

राहुल सांकृत्यायन पर विचार गोष्ठी

राहुल फ़ाउण्डेशन और नौजवान भारत सभा के संयुक्त तत्वाधान में राहुल सांकृत्यायन के स्मृतिदिवस 14 अप्रैल के अवसर पर पंचायती हॉल, दर्शनलाल चौक, देहरादून में विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में तमाम वक्ताओं ने राहुल सांकृत्यायन के जीवन-दर्शन, कृतित्व, व्यक्तित्व पर विस्तार से बात रखी और आज के दौर में राहुल सांकृत्यायन को याद करने की ज़रूरत पर बल देते हुए कहा कि आज पूँजीवादी व्यवस्था चौतरफ़ा संकटों से घिर चुकी है। इस संकट से ध्यान भटकाने के लिए और इस सड़ी हुई व्यवस्था को बचाए रखने के लिए तमाम प्रतिक्रियावादी फासिस्ट ताक़तें जनता को धार्मिक अन्धविश्वास, कूपमण्डूकता, रूढ़ियों, पाखण्डों की दिमाग़ी गुलामी की ज़ंजीरों में बाँध देना चाहती हैं। और एक हद तक वे अपने इस काम में सफल भी हुए हैं। ऐसे में प्रगतिशील क्रान्तिकारी ताक़तों को राहुल सांकृत्यायन की तरह ही वैचारिक सांस्कृतिक आन्दोलनों को जनता के बीच में खड़ा करना पड़ेगा।

साहित्यकार त्रेपन सिंह चौहान ने कहा कि राहुल ने अपनी परम्परा से, अपने सिद्धान्त और व्यवहार की एकता से हम लेखकों, साहित्यकारों को भी प्रभावित किया और हमें अपनी लेखनी के साथ ही जनता के साथ सड़कों पर उतरकर आन्दोलन करने को प्रेरित किया।

डी.एन. तिवारी ने कहा कि राहुल ने भारत के दर्शन की भौतिकवादी धारा से आम जनता का परिचय कराया। उन्होंने तमाम धार्मिक पाखण्डों, मूल्यों पर चोट की। उन्होंने कहा कि भारत के 84 सिद्ध नास्तिक थे। नाथ सम्प्रदाय में बड़ा हिस्सा मुसलमानों का शामिल था, जिनको आज कोई नहीं जानता।

गोष्ठी में गीता गैरोला ने राहुल सांकृत्यायन के जीवन-दर्शन पर बात रखते हुए कहा कि राहुल ने अपने लेखन में पहाड़ की संस्कृति को बहुत ही कलात्मक भाषा में उकेरा।

राजेन्द्र रावत ने राहुल सांकृत्यायन के लेखन पर बात रखते हुए कहा कि राहुल ने भारतीय भौतिकवाद की महत्ता समझी और सरल भाषा में, कहानियों, उपन्यासों, जीवन वृत्त, संस्मरणों के द्वारा जनता के बीच इतिहास और दर्शन की वास्तविक सच्चाई को जनता के सामने लाये।

लोक दस्तक के अश्विनी त्यागी ने कहा कि आज के दौर में जब हर जगह अन्धविश्वास, कुतर्क को बढ़ावा दिया जा रहा है और फासीवादी शक्तियाँ लगातार जनता को बाँटकर पूरे समाज में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने की तैयारी कर रही हैं, ऐसे में राहुल सांकृत्यायन को नौजवान पीढ़ी में फिर से स्थापित करना होगा।

नौजवान भारत सभा के अपूर्व ने कहा कि राहुल ने जिस सांस्कृतिक वैचारिक क्रान्ति को आगे बढ़ाया। आज के दौर में फिर से उसी सांस्कृतिक वैचारिक क्रान्ति की ज़रूरत है।

गोष्ठी का संचालन राहुल फ़ाउण्डेशन की कविता कृष्णपल्लवी ने किया और कहा कि राहुल को याद करना सिर्फ़ एक रस्मी कवायद नहीं है, बल्कि आज धार्मिक पाखण्ड, कूपमण्डूकता, अन्धविश्वास, गतिहीनता, अतर्कपरकता को ख़त्म करने के लिए राहुल का लेखन, उनका व्यक्तित्व, उनके सिद्धान्त और व्यवहार की एकता आज हमें प्रेरणा दे रहे हैं। राहुल के योगदानों को कभी भी भुलाया या मिटाया नहीं जा सकता।

गोष्ठी में डॉ. बर्थवाल, अर्जुन सिंह, राजीव कोठारी आदि ने भी अपनी बात रखी। गोष्ठी में मुख्य रूप से विजय भट्ट, गीता गैरोला, अश्विनी त्यागी, आयुषी, त्रेपन सिंह चौहान, डॉ. जितेन्द्र भारती, डी.एन. तिवारी, शमीम अहमद, राजीव कोठारी, समदर्शी बर्थवाल, सौरभ, शुभम पुण्डीर, जयदीप सकलानी आदि उपस्थित रहे।

सोचो, तुम्हें किन सवालों पर लड़ना है!

(पेज 1 से आगे)

कि नव-उदारवादी नीतियों ने जिस तरह महँगाई, लगातार कम होती मज़दूरियाँ, बेरोज़गारी और भुखमरी के दानव को खुला छोड़ दिया है उससे त्रस्त जनता एक न एक दिन ज़रूर ही संगठित होकर मैदान में खड़ी हो जायेगी। इसी लिए साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ताक़तें देशभर में सीमित पैमाने के छोटे-बड़े दंगे करवा रही हैं। फासीवाद जनता के सामने हमेशा एक झूठा दुश्मन खड़ा करता है ताकि अपनी बदहाली से परेशान जनता के गुस्से को उस झूठे दुश्मन के विरुद्ध मोड़कर असली कारणों से बहकाया जा सके। धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ ही प्रगतिशील ताक़तें हमेशा उसके निशाने पर रहती हैं। अन्धराष्ट्रवाद का हथियार उसके बड़े काम आता है।

'विकास'' की सच्चाई यह है कि देश की ऊपर की 1 फीसदी आबादी के पास देश की कुल सम्पदा का 58.4 फीसदी हिस्सा इकट्ठा हो चुका है और अगर ऊपर की 10 फीसदी आबादी को लें तो यह आंकड़ा 80.7 फीसदी तक पहुँच जाता है। दूसरी ओर नीचे की 50 फीसदी आबादी के पास कुल सम्पदा का महज 1 फीसदी है। देश के गोदामों में अनाज सड़ने के बावजूद प्रतिदिन लगभग 9000 बच्चे कुपोषण व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से मर जाते हैं। यूनीसेफ़ की रिपोर्ट के मुताबिक कुपोषण का शिकार दुनिया का हर तीसरा बच्चा भारत का है। 50 प्रतिशत औरतें खून की कमी की शिकार हैं। सरकारी नीतियों के कारण होने वाली मौतें आतंकी घटनाओं से होने वाली मौतों की तुलना में कई हजार गुना हैं। लेकिन इन मौतों पर नेताओं व मीडिया द्वारा साजिशाना चुप्पी बनी रहती है। 1 फरवरी को बजट पेश होने से पहले आर्थिक सर्वे की रिपोर्ट में यह बताया गया है कि हर साल औसतन 90 लाख लोग रोजी-रोटी की तलाश में अपना घर छोड़कर प्रवासी बन जाते हैं। जिनमें से ज़्यादातर मुम्बई, तिरूपुर, दिल्ली, बंगलूरू, लुधियाना आदि की गन्दी और बीमारी से भरी झोपड़पट्टियों में समा जाते हैं। आँकड़ों के मुताबिक देश की लगभग 36 करोड़ आबादी झुग्गी-झोपड़ियों और फुटपाथ पर रहने के लिए मजबूर है। मोदी सरकार ने जून 2015 में 2022 तक 2 करोड़ मकान बनवाने की बात की थी यानि हर साल लगभग 30 लाख मकान। लेकिन जुलाई 2016 में पता चला कि 1 साल में केवल 19,255 मकान बने।

इसी तरह हर वर्ष 2 करोड़ नये रोजगार पैदा करने के दावे की सच्चाई इसी से सामने आ जाती है कि बेरोजगारी की दर पिछले कई वर्षों से लगातार बढ़ते हुए 2015-16 में 7.3 प्रतिशत तक पहुँच गई। देश के लगभग 30 करोड़ लोग बेरोजगारी में धक्के खा रहे हैं। जनता की सुविधाओं में लगातार कटौती की जा रही है और अमीरज़ादों के अरबों रुपये के क़र्ज़ बट्टे खाते में डाले (वास्तव में माफ़ किये) जा रहे हैं। स्टेशन पर चाय बेचने का ढोंग रचते हुए अब स्टेशन को ही निजी हाथों में बेचा जा रहा है। इसकी शुरुआत हबीबगंज रेलवे स्टेशन (मध्यप्रदेश) से कर दिया गया है। आगे करीब 400 रेलवे स्टेशनों को पी.पी.पी (प्राइवेट पब्लिक पार्टनरशिप) के हवाले करने की योजना है। कॉलेजों-विश्वविद्यालयों की फीसें बढायी जा रही हैं, सीटें घटायी जा रही हैं। शिक्षा में सरकारी खर्च घटाया जा रहा है ताकि उसकी स्थिति लचर हो और शिक्षा को पूरी तरह बाज़ार के हवाले किया जा सके। इनके ख़िलाफ़ खड़े होने वाले छात्रों-संगठनों के आन्दोलनों को कुचला जा रहा है। अभी-अभी पंजाब विश्वविद्यालय में 11 गुना फीस बढ़ाने के खिलाफ जब छात्रों ने आन्दोलन चलाया तो न केवल उन पर बर्बर लाठी चार्ज किया गया बल्कि 58 छात्र-छात्राओं पर राष्ट्रदोह का मुकदमा लाद दिया। बाद में छात्रों की एकजुटता देख राष्ट्रदोह का मुकदमा हटा दिया लेकिन वहाँ दमनचक्र जारी है।

आज देश ही नहीं, पूरी दुनिया में फासिस्ट ताक़तें सिर उठा रही हैं। अमेरिका के इतिहास में पहली बार डोनाल्ड ट्रम्प जैसा व्यक्ति राष्ट्रपति बन गया है जो साध्वी प्राची और आदित्यनाथ जैसे लोगों की भाषा में बयानबाज़ियाँ करता रहा है। भारत में भी इसका सीधा सम्बन्ध पूँजीवाद के गहराते संकट से है। नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों को जितने नंगई और कुशलता के साथ मोदी ने लागू करना शुरू किया उसके कारण बड़े-बड़े पूँजीपति घराने, बैंकों के मालिक, हथियारों के सौदागर, देश के तेल और गैस पर क़ब्ज़ा जमाये अम्बानी जैसे धनपशु, फिक्की, एसोचैम जैसी संस्थायें तथा मध्य वर्ग के लोग मोदी की शान में क़सीदे पढ़ रहे थे। मगर संकट की चपेट ऐसी है कि जनता को बुरी तरह निचोड़कर भी मोदी सरकार अपने आकाओं के घटते मुनाफ़े को बढ़ा नहीं पा रही है। ऐसे में कई पूँजीपति घरानों का धैर्य भी जवाब दे रहा है। दूसरी ओर, बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी से तबाह आम जनता ठगी महसूस कर रही है और चारों ओर से विरोध के स्वर उठ रहे हैं। ऐसे में आने वाले दिनों में सरकारी दमन और सड़कों पर संघी गुण्डा गिरोहों का उत्पात बढ़ता ही जायेगा।

निश्चय ही फासीवादी माहौल में क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार एवं संगठन के कामों का बुर्जुआ जनवादी स्पेस और भी सिकुड़ जायेगा, लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह होगा कि नवउदारवादी नीतियों के बेरोकटोक और तेज़ अमल तथा हर प्रतिरोध को कुचलने की कोशिशों के चलते पूँजीवादी ढाँचे के सभी अन्तरविरोध उग्र से उग्रतर होते चले जायेंगे। मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता रीढ़विहीन गुलामों की तरह सबकुछ झेलती नहीं रहेगी। देश के छात्र-नौजवान चुपचाप सहते नहीं रहेंगे। आने वाले दिनों में व्यापक मज़दूर उभारों की परिस्थितियाँ तैयार होंगी। छात्रों-नौजवानों को भी यह समझना होगा कि उनकी लड़ाई मेहनतकशों को अपने साथ लिये बिना आगे नहीं बढ़ सकती। उन्हें फासिस्टों का भण्डाफोड़ करने और उनके मज़दूर-विरोधी चरित्र के बारे में मेहनतकश जनता को जागरूक करने के लिए उनके बीच जाना होगा। यदि इन्हें नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी शक्तियाँ तैयार रहेंगी और साहस के साथ ऐसे उभारों में शामिल होकर उनकी अगुवाई अपने हाथ में लेंगी तो क्रान्तिकारी संकट की उन सम्भावित परिस्थितियों में बेहतर से बेहतर इस्तेमाल करके संघर्ष को व्यापक बनाने और सही दिशा देने का काम किया जा सकेगा। अपने देश मे और और पूरी दुनिया में बुर्जुआ जनवाद का क्षरण और नव फासीवादी ताक़तों का उभार दूरगामी तौर पर नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं के विस्फोट की दिशा में भी संकेत कर रहा है।

मज़दूरों और मेहनतकशों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी होगी कि फ़ासीवाद पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद की राजनीति झूठा प्रचार या दुष्प्रचार करके सबसे पहले एक नकली दुश्मन को खड़ा करती है ताकि मज़दूरो-मेहनकशों का शोषण करने वाले असली दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग को जनता के गुस्से से बचाया जा सके। ये लोग न सिर्फ़ मज़दूरों के दुश्मन हैं बल्कि आम तौर पर देखा जाये तो ये पूरे समाज के भी दुश्मन हैं। इनका मुक़ाबला करने के लिए मेहनतकश वर्गों को न सिर्फ़ अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिए एकजुट होकर पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ एक सुनियोजित लंबी लड़ाई लड़ने की शुरुआत करनी होगी, बल्कि साथ ही साथ महँगाई, बेरोज़गारी, महिलाओं की बराबरी तथा जाति और धर्म की कट्टरता के खिलाफ़ भी जनता को जागरूक करना होगा।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चैकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमख़म रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मज़दूर वर्ग की फौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए।

यह पूँजीवादी व्यवस्था अन्दर से सड़ चुकी है, और इसी सड़ाँध से पूरी दुनिया के पूँजीवादी समाजों में हिटलर-मुसोलिनी के वे वारिस पैदा हो रहे हैं, जिन्हें फासिस्ट कहा जाता है। फासिस्ट पूँजीवादी लोकतंत्र तक को नहीं मानते और उसे पूरी तरह रस्मी बना देते हैं और वास्तव में पूँजी की नंगी, खुली तानाशाही स्थापित कर देते हैं। फासिस्ट धर्म या नस्ल के आधार पर आम जनता को बाँट देते हैं, वे नक़ली राष्ट्रभक्ति के उन्मादी जुनून में हक़ की लड़ाई की हर आवाज़ को दबा देते हैं, वे धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यकों को निशाना बनाकर एक नक़ली लड़ाई से असली लड़ाई को पीछे कर देते हैं, पूरे देश में दंगों और ख़ून-खराबों का विनाशकारी खेल शुरू कर देते हैं। पूँजीपति वर्ग अपने संकटों से निजात पाने के लिए फासिज़्म को संगठित करता है और ज़ंजीर से बँधे कुत्ते की तरह उसका इस्तेमाल करना चाहता है, लेकिन जब तब यह कुत्ता अपनी जंजीर छुड़ा भी लेता है और तब समाज में भयंकर ख़ूनी उत्पात मचाता है। हमारे देश में पिछले पच्चीस छब्बीस वर्षों से कभी मंदिर-निर्माण, कभी लव-जेहाद, कभी गाय तो कभी तथाकथित देशद्रोह बनाम देशप्रेम के नाम पर जारी यह उन्पाद बढ़ता हुआ पूरे देश को एक ख़ूनी दलदल की ओर धकेलता जा रहा है। धर्म, नक़ली देशप्रेम और तमाम फ़र्ज़ी मुक़दमों को उभाड़कर पूँजीवादी लूट, पुलिसिया दमन, बेदख़ली, बेरोज़गारी, महँगाई आदि नब्बे फ़ीसदी लोगों की ज़िंदगी के बुनियादी मुद्दों को तथा सरकार की वायदा-खिलाफ़ियों पर परदा डाल दिया गया है। जिन्हें मिलकर दस फ़ीसदी लुटेरों से लड़ना है, वे आपस में ही एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं।

आखिर मुल्क़ को इस अँधेरी सुरंग से बाहर निकालने का कोई रास्ता है? क्या रोशनी की कोई लकीर कहीं दीख रही है? - हाँ, बिल्कुल। इस अँधेरे से बाहर निकलने का एक ही रास्ता है - शहीदेआज़म भगतसिंह का रास्ता। नाउम्मीदों की एक ही उम्मीद बची है - क्रांति। हमें अपने महान शहीदों द्वारा छेड़ी गयी अधूरी लड़ाई को अंजाम तक पहुँचाना होगा, मेहनतकश जनता के बहादुर सपूतों को भगतसिंह के विचारों का परचम ऊँचा उठाना होगा, आम जनता के इंक़लाबी जनसंगठन बनाने होंगे तथा देशी-विदेशी लूट और जनतंत्र नामधारी धनतंत्र की क़ब्र खोदने की तैयारी करनी होगी। तभी जाकर ऐसा समाज बनेगा जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज पर उत्पादन करने वाले काबिज होंगे, फ़ैसले की ताक़त उनके हाथों में होगी। भगतसिंह ने ऐसी ही आज़ादी का सपना देखा था, जिसमें सत्ता मेहनतकश के हाथों में हो, न कि हर पाँच साल पर होने वाले चुनावी ड्रामे का जिसमें लोकतंत्र के नाम पर केवल पूँजी के घोड़ों पर सट्टा लगता हो।

आज जगह-जगह अन्याय के खिलाफ युवा सड़कों पर उतर रहे हैं लेकिन सवाल ये है कि युवाओं की बड़ी तादाद अभी भी इन संघर्षों में शामिल क्यों नहीं है? जनता की बड़ी आबादी की निष्क्रियता क्यों है? इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि बहुत बड़ी आबादी अपनी ज़िन्दगी की तबाही-बर्बादी के कारणों से परिचित नहीं है। लोगों के इस पिछड़ेपन का फायदा शासक वर्ग उठाते हैं। वो लोगों की समस्याओं का कारण किसी अन्य धर्म के लोगों या जाति, देश आदि से जोड़ देते हैं। दंगे-फसाद करवाते हैं। लोगों की एकता टूट जाती है और वो आपस में ही लड़ने पर आमादा हो जाते हैं। आर्थिक संकट के आज के दौर में धर्म-जाति के नाम पर झगड़े केवल चुनावी राजनीति का मसला नहीं है। उससे आगे बढ़कर संघ परिवार की फासीवादी राजनीति पूरे देश में बड़े पैमाने पर पाँव पसारती जा रही है। फासीवादी जहाँ एक ओर महँगाई बढ़ाकर, जनता को मिलने वाली छूटों में कटौती करके बड़े-बड़े उद्योगपतियों के मुनाफे की दर को स्थिर रखते हैं या बढ़ाते हैं वहीं दूसरी ओर इससे असंतुष्ट होकर जनता सड़कों पर न उतर पड़े, इसके लिए लोगों में नकली राष्ट्रवाद, मन्दिर-मस्जिद, धार्मिक झगड़े, संस्कृति के नाम पर झगड़े आदि भड़काते हैं। उनके गुण्डा गिरोह जनता के लिए लड़ने वाले लोगों की क्रूर हत्यायें करते रहते हैं और वे शासन-प्रशासन को भी अपने हाथ में ले लेते हैं। इन फासीवादी ताकतों का विरोध करने वाले लोगों को देशद्रोही ठहरा दिया जाता हैं। यानि कि एक निरंकुश तानाशाही जनता पर थोप दी जाती है। अतीत में हिटलर और मुसोलिनी की सत्ता इसकी मिसाल हैं और वर्तमान समय में भारत में संघ परिवार।

हमें भी इन झगड़ों के कारणों को समझना होगा। इन झगड़ों का परिणाम केवल आम जनता की तबाही होती है। जबकि दोनों धर्मो के धनिको को कोई नुकसान नहीं होता। युवाओं को टी.वी चैनलों, धर्म के ठेकेदारों, नेताओं-मन्त्रियों के भ्रमजाल से बाहर आना होगा। शिक्षा, रोजगार, जैसे वास्तविक मुद्दों पर संघर्ष संगठित करना होगा। नेताओं को घेरना होगा कि जो वायदे वो चुनाव में करते हैं उसे पूरा करें। जातिवाद-भेदभाव की दीवारें गिरानी होंगी। धार्मिक कट्टरपंथियों, चाहे वो हिन्दू हों या मुस्लिम, सिख या ईसाई, के खिलाफ हल्ला बोलना होगा। अन्धविश्वास, रूढ़ियों के विरुद्ध वैचानिक चेतना का प्रचार-प्रसार करना होगा। हमें मेहनतकश जनता के वास्तविक मुद्दों पर संघर्षों से इस लड़ाई को जोड़ना होगा।

अमेरिका है दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी!

भूमण्डलीय आतंकवादी के चुनिन्दा अपराध

अमेरिकी साम्राज्यवादी पूरी दुनिया के पैमाने पर आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का दावा करते हैं। सच्चाई यह है कि स्वयं अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी देश है। आज जिन इस्लामी कट्टरपन्थियों से लड़ने के नाम पर इराक़, अफ़गानिस्तान और दुनिया के कई देशों में अमेरिका बमबारी, नरसंहार और सैनिक कब्ज़ों, का सिलसिला जारी रखे हुए है, वे उसी के पैदा किये हुए भस्मासुर हैं। अमेरिका आतंकवाद के नाम पर दुनिया की जनता के विरुद्ध युद्ध छेड़े हुए है। वह अपने साम्राज्यवादी वर्चस्व के लिए युद्ध और आतंक का कहर बरपा कर रहा है। अमेरिकी सत्ताधारियों के चुनिन्दा ऐतिहासिक अपराधों की एक सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है :

अमेरिका के मूल निवासियों का क़त्लेआम : संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापक जब उत्तर अमेरिका पहुँचे, उस समय से लेकर बीसवीं शताब्दी तक मूल निवासियों के नरसंहार का और उनकी ज़मीनें हड़पने का सिलसिला लगातार चलता रहा। ऐसी बहुतेरी घटनाओं में "आँसुओं का रास्ता" (ट्रेल ऑफ टीयर्स) नाम से प्रसिद्ध वह ऐतिहासिक घटना भी शामिल है जब दक्षिणपूर्व अमेरिका के हज़ारों मूल बाशिन्दों को दक्षिण-पूर्वी अमेरिका से उजाड़कर ओक्लाहामा की ओर कूच करने के लिए मजबूर किया गया। ऐसे 15000 चेरोकी लोगों में से 4000 यात्रा के दौरान ही मर गये।

अश्वेतों की गुलामी : अफ़्रीका से ले जाये गये अश्वेत गुलामों से फार्मों पर काम कराते समय, उनके साथ पशुवत व्यवहार करने और बर्बर ढंग से यातनाएँ देने का सिलसिला उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक जारी रहा। दास प्रथा पर रोक के बाद भी अश्वेत आबादी उत्पीड़न और भेदभाव का शिकार बनी रही। अश्वेतों की एक छोटी-सी आबादी ऊपर उठकर आज कुलीन मध्यवर्ग में शामिल हो चुकी है, पर बहुसंख्यक अश्वेत आज भी सामाजिक अलगाव अपमान और भेदभाव के शिकार हैं।

मेक्सिको पर हमला, 1846-1848: अमेरिकी सेनाओं ने मेक्सिको पर हमला करके मेक्सिकी बन्दरगाहों की घेरेबन्दी कर ली और मेक्सिको सिटी पर कब्ज़ा कर लिया। बदले में मेक्सिको को अपना बहुत बड़ा भूभाग अमेरिका को देना पड़ा जिसमें न्यू मेक्सिको, कैलिफोर्निया और उत्तरी मेक्सिको का बहुत बड़ा हिस्सा शामिल था।

स्पेनी-अमेरिकी युद्ध, 1898 : क्यूबा की स्वतन्त्रता को समर्थन देने की आड़ में अमेरिका ने प्रशान्त महासागर और कैरीबियन में स्थित स्पेनी सेनाओं पर हमला किया और उन्हें पराजित करने के बाद स्पेनी उपनिवेशों – क्यूबा, प्यूर्टोरिको, गुआम और फिलिप्पीन्स पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

फिलिप्पीन्स पर हमला, 1899 : फिलिप्पीन्स की उपनिवेशवाद-विरोधी शक्तियों को अमेरिका ने निर्दयतापूर्वक कुचल दिया। प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक **मार्क ट्वेन** के शब्दों में, "...उन्हें दफ़्न कर दिया गया, उनके खेतों को तबाह कर दिया गया, गाँवों को जला दिया गया, विधवाओं और अनाथ बच्चों को घरों से बाहर धकेल दिया गया, दर्जनों देशभक्त नेताओं को देशनिकाला दे दिया गया और बचे हुए लाखों फिलिप्पीन्स निवासियों को गुलाम बना लिया गया।"

हैती पर हमला, 1915 : अमेरिका ने हैती पर हमला करके कब्ज़ा कर लिया। अमेरिकी नौसैनिक सीधे हैतियन नेशनल बैंक में पहुँचे और सोने का समूचा आरक्षित भण्डार उठाकर न्यूयॉर्क सिटी पहुँचा दिया। प्रतिरोध को अमेरिकी सेना ने बर्बरतापूर्वक कुचल दिया। नेताओं की हत्या कर दी गयी, बस्तियाँ जलाकर ज़मींदोज़ कर दी गयीं और 15,000 से 30,000 के बीच हैतीवासियों को मौत के घाट उतार दिया गया।

तुल्सा नरसंहार, 1921 : पुलिस, कू-क्लक्स-क्लान के फासिस्ट गुण्डों और श्वेत नस्लवादियों की एक भीड़ ने तुल्सा (ओक्लाहामा) में अश्वेत आबादी पर हमला बोलकर सैकड़ों लोगों को मार डाला और घरों को लूट लिया। फिर पुलिस ने छह विमानों से बम गिराकर पूरी बस्ती को जला डाला।

हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराना और टोक्यो पर फ़ायरबॉम्बिंग, 1945 : दूसरे महायुद्ध के अन्त में, जब जापान की पराजय बस होने ही वाली थी, उस समय अपनी साम्राज्यवादी चौधराहट सिद्ध करने और समाजवादी शिविर को आतंकित करने के लिए, अमेरिका ने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराये। इसमें दो लाख नागरिक तुरन्त मारे गये। लाखों की आबादी वर्षों तक रेडिएशन जनित बीमारियों से घुट-घुटकर मरती रही और दशकों तक विकिरण जनित विकृतियों से ग्रस्त बच्चे पैदा होते रहे। टोक्यो पर बमबारी से लगी आग में हज़ारों लोग मारे गये और लाखों बेघर हो गये।

कोरिया, 1950-1953 : कोरिया पर हमले के दौरान अमेरिका ने जितने बम और तोप के गोले बरसाये, उतना उसने पूरे दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान भी नहीं इस्तेमाल किया था। अमेरिकी वायुसेना के जनरल कर्टिस लेमे ने दावा किया था कि अमेरिकी जहाज़ों की बमबारी ने उत्तर कोरिया के हर छोटे-बड़े शहर को जलाकर खाक कर दिया था।

वियतनाम, 1965-1975 : वियतनामी जनता के मुक्तियुद्ध को कुचलने की कोशिशों के दौरान अमेरिका ने वियतनाम तथा पड़ोसी देशों – कम्पूचिया और लाओस पर कुल 70 लाख टन बम गिराये थे। हज़ारों गाँव सेना ने उजाड़ दिये। 'माई लाई नरसंहार' जर्मन नात्सियों द्वारा किये जाने वाले नरसंहारों जैसी ही बर्बर घटना थी। वियतनामी मुक्तियुद्ध के इन दस वर्षों के दौरान लगभग 30 लाख वियतनामी मारे गये। 'एजेंट ऑरेंज' और अन्य रासायनिक हथियारों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया।

क्यूबा, 1962 : सी.आई.ए. ने कुछ क्यूबाई आप्रवासियों को ट्रेनिंग और हथियार देकर तोड़फोड़ एवं विद्रोह उकसाने के लिए क्यूबा भेजा। पिछली आधी सदी से क्यूबा की आर्थिक घेरेबन्दी जारी है। सी.आई.ए. ने फिदेल कास्त्रो की हत्या की सौ से भी अधिक कोशिशें कीं।

डोमिनिकन गणराज्य, 1965 : 20,000 अमेरिकी नौसैनिकों ने एक क्रान्तिकारी विद्रोह को कुचलने के लिए हमला किया जिसमें 6000 से 10,000 के बीच डोमिनिकन लोग मारे गये।

ग्वाटेमाला, 1878-1944 : अमेरिका-प्रायोजित मृत्यु-दस्ते (डेथ स्क्वाड) की सत्ता ने 400 माया (मूल निवासी) गाँवों को उजाड़ दिया। नृशंसता और यातना की जघन्यतम मिसालें कायम की गयीं और दसियों हज़ार ग्रामीणों को मौत के घाट उतार दिया गया।

पनामा, 1989 : एक अमेरिकी हमले के दौरान 2000 से 6000 के बीच लोग मारे गये। इनमें ज़्यादातर ग़रीब और मज़दूर बस्तियों के लोग थे जिन्हें सामूहिक क़ब्रों में दफ़्न कर दिया गया।

ऑपरेशन डेज़र्ट स्टॉर्म 1991 : इराक पर पहले अमेरिकी हमले के दौरान लाखों लोग मारे गये या घायल हुए। हमले के दौरान, सिर्फ़ एक राजमार्ग पर भागते हुए (जिसे बाद में "हाइवे ऑफ डेथ" कहा गया) 48 घण्टों के भीतर 25,000 नागरिक और सैनिक मारे गये।

सोमालिया, 1993 : अमेरिकी सेना के हेलिकॉप्टर ने एक भीड़ पर मिसाइल दागा जिससे 100 निहत्थे लोग मारे गये और कई घायल हुए। ग्रामीणों की फ़सलें और घर जला दिये गये और मवेशी मार दिये गये।

ईरानी यात्री विमान को मार गिराना, 1988 : अमेरिकी सेना ने ईरानी क्षेत्र के ऊपर उड़ रहे एक ईरानी यात्री विमान को मार गिराया जिसमें सवार कुल 290 यात्री (66 बच्चों सहित) मारे गये। अमेरिका ने इस घटना पर कोई खेद नहीं जताया।

अफ़गानिस्तान, 2001 से लेकर अबतक : अमेरिकी नेतृत्व में हुए हमले में हज़ारों लोग मारे जा चुके हैं। अमेरिकी अगुवाई में नाटो सेनाओं ने शादी की पार्टियों तक पर बमबारी की, घर-घर की तलाशी ली गयी, जेलों में हज़ारों बेगुनाह नागरिक टॉर्चर किये गये और तालिबान व अल क़ायदा आतंकियों के छिपे होने के सन्देह में गाँव के गाँव तबाह कर दिये गये।

इराक़ पर हमला और कब्ज़ा, 2003 से अब तक : संहारक रासायनिक हथियार रखने (जो कभी नहीं मिले) और अल क़ायदा से साठगाँठ (जो कभी साबित नहीं हुआ) का आरोप लगाकर अमेरिका ने इराक़ पर कब्ज़ा जमाया। इस दूसरे इराकी युद्ध और अमेरिकी कब्ज़े के दौरान एक लाख से अधिक इराकी नागरिक मारे जा चुके हैं और 40 लाख अपने घरों से उजड़ने को मजबूर हुए हैं। अमेरिकी प्रतिबन्धों के कारण दवाओं के अभाव में दस वर्ष में 5 लाख इराक़ी बच्चों की मौत पर अमेरिकी विदेशी मंत्री मैडेलिन अलब्राइट का कहना था कि "ये एक जायज़ क़ीमत है।"

हैती, 2004 : 29 फरवरी 2004 को अमेरिकी सेना ने हैती के राष्ट्रपति एरिस्टाइड का अपहरण कर लिया और उन्हें बलपूर्वक एक विमान में बैठाकर मध्य अमेरिकी गणराज्य भेज दिया। कई दिनों तक अमेरिकी नौसैनिक राजधानी पर कब्ज़ा जमाये रहे।

लीबिया, 2011 : लोकतंत्र लाने के नाम पर अमेरिका ने फ्रांस आदि देशों के साथ मिलकर लीबिया पर हमला करके तख़्तापलट कराया और पूरे देश को भयंकर गृहयुद्ध में झोंक दिया जिसमें हज़ारों लोग मारे गये।

सीरिया, 2013 : अमेरिकी शह और सीधे हस्तक्षेप के कारण पिछले चार वर्षों से सीरिया में जारी गृहयुद्ध में 5 लाख लोग मारे जा चुके हैं और डेढ़ करोड़ बेघर हो गये हैं। रासायनिक हथियारों का बहाना लेकर एक बार फिर सीरिया पर उसी तरह से हमला करने की तैयारी की जा रही है जैसे इराक़ पर किया गया था।

टॉर्चर चैम्बर्स : अबू ग़रेब (इराक़), गुआन्तानामो (क्यूबा) और बगराम (अफ़गानिस्तान) के अमेरिकी टार्चर चैम्बर्स में दुनियाभर के लोगों को पकड़कर लाया जाता है और तरह-तरह से यन्त्रणाएँ दी जाती हैं। और बिना कोई मुकदमा चलाये मार डाला जाता है। ऐसे कई यन्त्रणा शिविर मध्यपूर्व में भी हैं और यूरोप में भी अमेरिका के कई गुप्त जेलखाने हैं।

ड्रोन हमले : 2009 से लेकर अब तक ड्रोन नामक मानवरहित विमानों से आतंकवादियों के सफ़ाये के नाम पर किये जाने वाले हमलों में, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और यमन में हज़ारों निर्दोष नागरिक मारे जा चुके हैं और बस्तियों की भारी तबाही हुई है।

●

ऊपर जो सूची दी हुई है, वह अमेरिकी साम्राज्यवादियों के चुनिन्दा युद्ध-अपराधों और आतंकवादी कुकृत्यों की एक संक्षिप्त सूची है। इनके अलावा अनगिनत देशों में अमेरिका ने तख़्तापलट कराये हैं या अमेरिकी हथियारों और सैनिकों ने कठपुतली शासकों की मदद से वहाँ के लोगों का क़त्लेआम किया है। अमेरिकी कम्पनियाँ पूरी दुनिया की अकूत प्राकृतिक सम्पदा को और आम मेहनतकश जनता को लूटकर तबाह कर रही हैं। भोपाल गैस त्रासदी में हुए नरसंहार को इतिहास पूँजीवाद के अभिशाप के रूप में हमेशा याद रखेगा। दुनिया के कई हिस्सों में ये कम्पनियाँ पर्यावरण विनाश का ताण्डव रच रही हैं। केवल युद्ध द्वारा ही नहीं, खनिजों के दोहन के चलते और एग्री बिज़नेस कम्पनियों द्वारा उजाड़े जाने के चलते भी तीसरी दुनिया के देशों में सालाना करोड़ों की आबादी विस्थापित होती है और करोड़ों लोगों को भरपेट भोजन तक नसीब नहीं होता।

दूसरी ओर अमेरिकी समृद्ध लोग अपनी विलासिता पर जितना ख़र्च करते हैं उसका पूरी दुनिया में कोई सानी नहीं है।

ज़ाहिर है कि केवल अमेरिका ही नहीं, सभी साम्राज्यवादी देश मानवता के दुश्मन और अपराधी हैं। साम्राज्यवाद का मतलब है दैत्याकार एकाधिकारी पूँजीपति घरानों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं और राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा पूरी दुनिया की जनता के जीवन को नियन्त्रित करना। साम्राज्यवाद का मतलब उन परजीवी शोषकों से है जो दुनिया के अरबों आम लोगों को निचोड़कर पूँजी बटोरते हैं। इसका मतलब उन परजीवी वित्तीय लुटेरों से है जो कम्प्यूटर के की-बोर्ड की कुछ कुंजियाँ दबाकर धन की विराट राशि पृथ्वी पर एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरित कर देते हैं, और लाखों लोगों को सड़कों पर धकेल देते हैं और लाखों के मुँह का निवाला छीन लेते हैं। साम्राज्यवाद का मतलब है युद्ध – उत्पीड़ितों के प्रतिरोध को कुचलने के लिए युद्ध और प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी देशों के बीच दुनिया के बँटवारे के लिए युद्ध। इन देशों की सत्ताएँ कम्प्यूटर का एक बटन दबाकर मानवता को अकूत तबाही-बर्बादी के दहाने में झोंक देने की क्षमता रखती हैं। साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था है। मानवता इसे नष्ट करके ही अपने को सुरक्षित कर सकती है और अपनी प्रगति सुनिश्चित कर सकती है।

अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्यवादी है और विश्व पूँजीवाद का चौधरी है। अमेरिकी शासकवर्ग अमेरिकी जनवाद (लोकतन्त्र) को लगातार महिमामण्डित करता है, लेकिन वास्तव में वह ऐसा पूँजीवादी जनवाद है जो न केवल पूरी दुनिया के लिए बल्कि थोड़े से धनपतियों को छोड़कर बहुसंख्यक आम अमेरिकी आबादी के लिए भी एक अपराधी, दमनकारी ख़ूनी तन्त्र है।

नवउदारवाद के पिछले दो दशकों के दौरान भारत में भी ख़ुशहाल मध्यवर्ग की वह आबादी तेज़ी से फली-फूली है, जिसकी नज़रों में अमेरिका "स्वर्ग" है। देश की 121 करोड़ आबादी में से बमुश्किल 12-14 करोड़ लोगों की यह आबादी है, जिसके लिए तमाम शॉपिंग मॉल-मल्टीप्लेक्स-अपार्टमेंट-फॉर्म हाउस-पाँच सितारा होटल, क्लब, आरामगाह, भाँति-भाँति की कारें, हवाई यात्राएँ आदि सब कुछ हैं। भयंकर ग़रीबी में जीने वाली तीन-चौथाई आबादी, कुपोषण के शिकार 40 करोड़ लोगों और 18 करोड़ बेघरों के नारकीय जीवन के सागर में ये उच्च मध्य वर्ग के लोग ऐश्वर्य और विलासिता के टापुओं पर रहते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा तो यूरोप और अमेरिका के धनी लोगों के स्तर का जीवन बिताता है। यही वे लोग हैं जो अमेरिकी समाज के जनवाद के गुण गाते हैं और उसके हत्यारे चरित्र और ऐतिहासिक अपराधों पर पर्दा डालते हैं। जो ऊपर वाले हैं उनका तो "स्वर्ग" अमेरिका है ही। वे तो भारत में भी अमेरिका का ही जीवन जीते हैं।

अमेरिका के प्रशंसक बुद्धिजीवी इस ऐतिहासिक अपराधी के बौद्धिक एजेण्ट हैं। ऐसे लोगों का अपराध भी अक्षम्य है।

चुनिन्दा अमेरिकी हमले, जिनमें सी.आई.ए. से सहायता-प्राप्त सैन्य कार्रवाइयाँ और कठपुतली सत्ताओं द्वारा छेड़े गये युद्ध भी शामिल हैं

अर्जेण्टीना 1890; चीले 1891; हैती 1891; हवाई 1893; ब्लूफील्ड, निकारागुआ 1894 और 1899; चीन 1894-95; कोरिया 1894-96; कोरिण्टो, निकारागुआ 1896; चीन 1898-1900; फिलीप्पीन्स 1898-1910, क्यूबा और प्यूर्टो रिको 1898-1902; सान जुआन देल सुर, निकारागुआ 1898; समोआ 1899; पनामा 1901-14; पनामा कनाल ज़ोन 1914; होण्डुरास 1903; डोमिनिकन रिपब्लिक 1903-04; कोरिया 1904-05; क्यूबा 1906-09; निकारागुआ 1907; होण्डुरास 1907; पनामा 1908; निकारागुआ 1910; क्यूबा 1912; पनामा 1912; होण्डुरास 1912; निकारागुआ 1912; बे ऑफ़ मेक्सिको (हेराक्रूज़) 1914; डोमिनिकन रिपब्लिक 1914; मेक्सिको 1914-18; हैती 1914-34; डोमिनिकन रिपब्लिक 1916-24; क्यूबा 1917; सोवियत संघ 1918; पनामा 1918; होण्डुरास 1919; ग्वाटेमाला 1920; तुर्की 1922; चीन 1922; होण्डुरास 1924; पनामा 1925; अल सल्वाडोर 1932; कोरिया 1950-53; प्यूर्टो रिको 1950; ग्वाटेमाला 1954; मिस्र 1956; लेबनान 1958; पनामा 1958; क्यूबा 1962; डोमिनिकन रिपब्लिक 1965; वियतनाम 1965-75; ग्वाटेमाला 1967; ओमान 1970; ईरान 1980; अल सल्वाडोर 1981; निकारागुआ 1981; ग्रेनाडा; 1982; लेबनान 1982; होण्डुरास 1983; बोलीविया 1986; पनामा 1989; इराक़ 1991; युगोस्लाविया 1992; सोमालिया 1993; हैती 1994; लाइबेरिया 1996; सूडान 1998; **अफ़गानिस्तान 1998 से अबतक; इराक़ 2003 से अबतक; लीबिया 2011 से अब तक; सीरिया 2013 से अब तक...**

(बिगुल डेस्क)

बेरोज़गारी ख़त्म करने के दावों के बीच बढ़ती बेरोज़गारी!

तपिश

तमाम देशी-विदेशी और सरकारी एजेंसियों के आर्थिक सर्वेक्षणों की रिपोर्टें बताती हैं कि भारत में बेरोज़गारी की समस्या विकराल रूप धारण करने वाली है। हालाँकि प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी सहित पूरी भाजपा-आरएसएस ब्रिगेड अच्छे दिनों, विकास-विकास और डिजिटल इण्डिया का भजन गाकर जनता को भरमाने-फुसलाने की कोशिशों में तन-मन-धन से लगी हुई है। सन् 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा की ओर से नरेन्द्र मोदी ने विकास और अच्छे दिनों का सपना दिखाया था और बेरोज़गारों के लिए 1 करोड़ से भी अधिक नौकरियाँ पैदा करने का वायदा किया था। हमें भूलना नहीं चाहिए कि कांग्रेस के ज़माने में कांग्रेसी नेता भी इसी तरह हवाई वायदों के हवाई गोले दागा करते थे। मज़ेदार बात यह है कि उस समय भी आम जन इन हवाई दावों की हक़ीक़त को नहीं समझते थे और आज भी नहीं समझते हैं। सच्चाई को क़रीब से जानने के लिए आइए सबसे पहले हम कुछ आर्थिक सर्वेक्षणों की रिपोर्टों के आँकड़ों पर एक सरसरी नज़र डालें।

देश के उद्योगपतियों की शीर्ष संस्था एसोचैम की रिपोर्ट बताती है कि 1991 में भारत में कुल श्रमिकों की संख्या 33.7 करोड़ थी, जो 2013 तक बढ़कर क़रीब 48 करोड़ हुई और 2020 तक उसके 65 करोड़ हो जाने की सम्भावना है। भारत के श्रम मन्त्रालय के अनुसार हर माह क़रीब 10 लाख नये लोग श्रम बाज़ार में काम करने के लिए उतरते हैं। ये सिर्फ़ आँकडे नहीं हैं, बल्कि एक ठोस सच्चाई है जो बताती है कि हमारे देश में रोज़गार की माँग ठोस रूप में कितनी है।

अब देखते हैं कि इस माँग के समक्ष कुल रोज़गार की आपूर्ति कितनी है। हाल ही में भारत सरकार द्वारा जारी आर्थिक सर्वेक्षण 2016 को मानें तो 1989-2010 के बीच 1 करोड़ 50 हज़ार रोज़गार पैदा हुआ। इनमें से भी औपचारिक सेक्टर में मात्र 30 लाख 70 हज़ार नौकरियाँ पैदा हुई। हम जानते हैं कि 1991-2013 के दौर में भारत में जीडीपी की विकास दर लगातार उठान पर रही है। इसका मतलब है कि देश में लगातार पूँजी का विकास होता चला गया है जबकि रोज़गार का विकास ढलान पर है। यह रिपोर्ट बताती है कि 1999 से 2004-05 के बीच जहाँ जीडीपी में हर 100 रुपये की वृद्धि के बरक्स 50 नये रोज़गार पैदा हुए, वहीं 2004-05 से 2009-10 के बीच यह गिरकर मात्र 4 रोज़गार तक सिमट गया था।

सवाल यह है कि रोज़गार मुहैया कराने के नेताओं और पार्टियों के हवाई वायदों के विपरीत वास्तविक दुनिया में इतना कम रोज़गार क्यों पैदा हो रहा है। इसे जानने के लिए अर्थव्यवस्था के एक मुख्य क्षेत्र विनिर्माण पर एक नज़र दौड़ाइए। फ़िक्की की एक हालिया रिपोर्ट में बताया गया है कि वर्ष 2016-17 के दौरान विनिर्माण उद्योग अपनी क्षमता का मात्र 72 प्रतिशत ही काम करेगा। इसका मतलब है कि कारख़ानों में क़रीब 30 प्रतिशत मशीनें बन्द रहने वाली हैं। यही वजह है कि नये कारख़ाने लगने, वर्तमान कारख़ानों के विस्तार या फिर नये मज़दूरों की भर्ती की दूर-दूर तक कोई सम्भावना नहीं है। बहरहाल अगर इतना ही होता, तब भी गनीमत थी। अधिकांश प्रतिष्ठानों ने अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए मज़दूरियों पर होने वाले ख़र्चों में बड़ी कटौतियाँ करने की योजनाएँ बनायी हैं और उत्पादन की आधुनिक तकनीकों का विकास उनके मनसूबों को पूरा करने में मदद पहुँचा रहा है। पूँजीवाद के आरम्भ से ही पूँजीपति वर्ग ने विज्ञान और तकनीकी पर अपनी इज़ारेदारी क़ायम कर ली थी। तब से लेकर आज तक उत्पादन की तकनीकों में होने वाले हर विकास ने पूँजीपतियों को पहले से अधिक ताक़तवर बनाया है और मज़दूरों का शोषण करने की उनकी ताक़त को कई गुना बढ़ा दिया है। पिछले कुछ वर्षों में आईबीएम द्वारा विकसित 'वॉटसन' प्रणाली और विप्रो द्वारा एक ऐसी ही अन्य प्रणाली 'होम्स' का विकास इसका प्रमाण हैं। इतना ही नहीं पिछले कुछ वर्षों में रोबोटिक्स के विकास ने कारख़ानों के भीतर श्रम संगठन को व्यापक ढंग से बदल दिया है। ज़ाहिर है कि इन तकनीकों का असर आईटी सेक्टर, सॉफ़्टवेयर सेवा, टेलीकॉम, बैंकिंग एवं फ़ाइनेंस पर भी पड़ने वाला है। आपको बता दें कि जुलाई-सितम्बर 2016 के दौरान इस क्षेत्र से 16,000 लोगों को निकाला जा चुका है और अगले डेढ़ वर्षों में इस क्षेत्र में 15 लाख नौकरियाँ ख़त्म होने वाली हैं। इसकी मार ज़्यादातर सफ़ेदपोश मज़दूरों पर पड़ेगी जो आमतौर पर ख़ुद को मज़दूर मानते ही नहीं हैं। इसी तरह टेलीकॉम सेक्टर में कार्यरत 22 लाख लोगों में से 33 प्रतिशत को निकाले जाने की तैयारी हो चुकी है और यही हाल बैंकिंग सेक्टर का भी है।

हमने पहले भी बताया कि ऑटोमेशन की यह प्रक्रिया विनिर्माण उद्योग तक जाती है, जो कारख़ानों के भीतर श्रम के संगठन को तेज़ी से बदल रही है। आधुनिक उद्योग ने बड़े पैमाने पर रोबोट्स का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। टेक्सटाइल इण्डस्ट्री में एक रोबोटिक मशीन पर काम करने वाले मज़दूर से उतना उत्पादन करवाया जा सकता है जितना पहले 100 मज़दूर मिलकर किया करते थे। यही कारण है कि टेक्सटाइल उद्योग की एक बड़ी कम्पनी रेमण्ड्स ने भारत में चलने वाले 16 कारख़ानों में कार्यरत 30 हज़ार मज़दूरों में से 10 हज़ार को निकालने की तैयारियाँ कर ली है। एचएफ़एस नाम की एक अमेरिकी शोध संस्था के अनुसार 2021 तक भारत के छोटे-मँझोले उद्योगों में ऑटोमेशन के कारण 6 लाख 40 हज़ार कामगार बेरोज़गार होंगे जबकि मशहूर उद्योगपति मोहनदास पाई ने बताया है कि अगले 9 वर्षों में ऑटोमेशन की वजह से 20 करोड़ भारतीय युवा बेरोज़गार होने वाले हैं। विश्व बैंक ने भी एक आकलन किया है कि अगले 15 से 20 सालों में ऑटोमेशन की लहर भारत में 69 प्रतिशत कामगारों को बेरोज़गार करेगी।

दोस्तो, एक बात साफ़ है कि चुनावी मदारियों के और सन्त्रियों-मन्त्रियों के दावों के विपरीत भारत में बेरोज़गारी भयानक रूप धारण करने वाली है। ज़ाहिर है ये बेरोज़गार चुप नहीं बैठेंगे और देश-दुनिया का पूँजीपति वर्ग भविष्य के वर्ग-संघर्षों के तूफ़ानों की इन सम्भावनाओं से बेहद चिन्तित है। कहीं ऐसा तो नहीं कि सरकार, भाजपा, आरएसएस के लीडरान जिस जाति और धार्मिक नफ़रत को फैलाने का काम कर रहे हैं, वह सीधे तौर पर वर्ग संघर्षों से जनता का ध्यान भटकाने का राजनीतिक उपकरण बन चुका है और इस तरह प्रकारान्तर से पूँजीपति वर्ग की ज़रूरी सेवा कर रहा है?

नया वित्त विधेयक : एक ख़तरनाक क़ानून

(पेज 16 से आगे)

कर 1642 में राजशाही के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया और सत्ता अपने हाथ में ले ली। बाद में 1660 में जब बुर्जुआ वर्ग और सामन्ती राजशाही के बीच समझौता हुआ तो टैक्स लगाने और ख़र्चे के मद में आबण्टन का अधिकार बुर्जुआ वर्ग और उसकी प्रतिनिधि संसद के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के पास ही रहा; हालाँकि बाक़ी सभी क़ानून इस सदन और सामन्तों के हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स की सहमति से बनाना तय हुआ। इस तरह टैक्स और ख़र्च के आबण्टन वाले मनी बिल की शुरुआत हुई जिसको पारित करने का अधिकार सिर्फ़ हाउस ऑफ़ कॉमन्स का था, लॉर्ड्स इसमें सिर्फ़ सुझाव दे सकते थे। इसके पीछे के इतिहास से कोई मतलब न होते हुए भी मनी बिल की इस व्यवस्था को भारत में भी ज्यों का त्यों अपनाया गया और इसे पास करने का अधिकार सिर्फ़ लोकसभा के पास रहा।

यहाँ सवाल उठ सकता है कि किसी भी क़ानूनी परिवर्तन को मनी बिल या टैक्स से सम्बन्धित कहा जा सकता है, क्या इसकी कोई कसौटी नहीं। सरकार का कहना है कि इन क़ानूनों में परिवर्तन करने से ख़र्च होता है, इसलिए इन्हें भी मनी बिल कहा जा सकता है। पर ऐसा तो दरअसल हर क़ानून में ही होता है, इसलिए सरकार हर मनचाहे क़ानून को इस रास्ते से पारित करा सकती है। नियम के अनुसार कौन सा बिल मनी बिल है या नहीं, इसको तय करने का पूरा अधिकार भी लोक सभा अध्यक्ष के पास ही है जिसको चुनौती देने का कोई प्रावधान ही कहीं नहीं है। इस तरह देखा जा सकता है कि ख़ुद को दुनिया का सबसे बड़ा जनतन्त्र का दावा करने वाले देश के संवैधानिक ढाँचे में असल में जनवाद के लिए कोई जगह है ही नहीं और शासक वर्ग इसके ज़रिये जनवादी अधिकारों पर कितना ही क्रूर हमला कर सकता है।

अब नज़र डालते हैं कुछ उन मुख्य क़ानूनों पर, जिनमें इस बिल के द्वारा संशोधन किये गये। एक मुख्य परिवर्तन कारपोरेट समूहों द्वारा राजनीतिक दलों को दिये जाने वाले चन्दे में है। अब तक यह नियम था कि कोई कम्पनी अपने मुनाफ़े का साढ़े सात प्रतिशत ही राजनीतिक दलों को दे सकती है तथा उसे यह घोषित करना होगा कि उसने किस दल को कितना धन चन्दे में दिया। अब इस राशि की यह सीमा हटा लेने के साथ ही चन्दे की राशि और दल का नाम सार्वजनिक करने की शर्त भी हटा ली गयी है। यद्यपि अब तक भी ऐसे नियमों का उल्लंघन किया जाता था, लेकिन अब तो पूरा नियम ही हटाकर दलों को कारपोरेट समूहों से कितना भी धन पूरी तरह गुप्त रूप से लेने की छूट प्राप्त हो गयी जिसे पूरी तरह क़ानूनी ढंग से किया जा सकेगा। साथ ही चुनावी बॉण्ड जारी करने का प्रावधान भी इस वित्त विधेयक में है। जिससे कोई भी बैंक में धनराशि जमा कर ये बॉण्ड ख़रीद सकेगा और इन्हें किसी दल को दे सकेगा। बैंक इन्हें ख़रीदने वाले का नाम ज़ाहिर नहीं करेंगे। इसलिए यह भी भ्रष्टाचार और अपराध से प्राप्त धन या कारपोरेट समूहों द्वारा लोबीइंग के लिए गुप्त रूप से राजनीतिक दलों को दिया जा सकेगा, जिन्हें इसका कोई रिकॉर्ड रखने की ज़िम्मेदारी भी नहीं होगी।

इसके साथ ही 17 ऐसे क़ानून हैं जिनके तहत बहुत सारे विवादों के निपटारे के लिए न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) बने हुए थे। अब इनमें से बहुत सारे ट्रिब्यूनल बन्द किये गये हैं या मिला दिये गये हैं। साथ ही इनकी नियुक्ति और संचालन के नियम बदल कर इन्हें सुप्रीम कोर्ट के बजाय सीधे सरकारी नियन्त्रण में ले आया गया है। इससे आगे इनके द्वारा अन्यायपूर्ण सरकारी फ़ैसलों के ख़िलाफ़ किसी क़िस्म के निर्णय की वर्तमान में थोड़ी-बहुत सम्भावना भी ख़त्म हो जायेगी। इन ट्रिब्यूनलों में औद्योगिक विवाद, बैंक क़र्ज़ वसूली, रेलवे, पर्यावरण सम्बन्धित ग्रीन ट्रिब्यूनल, ग्राहक सुरक्षा, सिनेमा, आयकर, कम्पनी क़ानून, सैन्य बल, एयरपोर्ट, आदि से सम्बन्धित हैं।

आयकर क़ानून में किये गये परिवर्तन से आधार को अनिवार्य बना दिया गया है। साथ ही आयकर अधिकारियों को बिना कारण बताये ही किसी पर भी छापा मारने का अधिकार दिया गया है जिसके लिए उन्हें बाद में किसी अदालत में भी सफ़ाई देने की आवश्यकता नहीं होगी। यह कल्पना आसानी से की जा सकती है कि अफ़सरशाही के पास ऐसी निरंकुश शक्तियों का इस्तेमाल भी विरोधियों के ख़िलाफ़ कैसे किया जा सकता है।

पर हमारा मक़सद यहाँ क़ानूनी मसलों के विस्तार में जाना नहीं, बल्कि यह समझना है कि बुर्जुआ जनतन्त्र में जैसा प्रचार किया जाता है, सारी जनता के लिए जनतन्त्र वैसा होता नहीं। असल में तो यह मेहनतकश लोगों पर बुर्जुआ अधिनायकत्व है, सत्ताधारी पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग के शोषण की व्यवस्था की हिफ़ाज़त का औज़ार है। यह पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत के मुताबिक़ ही काम करता है - जब जनतन्त्र का नाटक करना हो तो वह किया जाता है; जब संकट की स्थिति में जनतन्त्र का नाटक छोड़कर मेहनतकश तबके पर फ़ासीवाद का नग्न आक्रमण करना हो तो यही संवैधानिक व्यवस्था बिना किसी रुकावट के उसकी भी पूरी इजाज़त देती है। इस व्यवस्था के अंगों द्वारा फ़ासीवाद की राह में रुकावट डालने की कल्पना या तो निहायत भोलेपन वाले लोग कर सकते हैं या जनवादी-वामपन्थी चोला ओढ़े शातिर अवसरवादी जो जनवाद-संविधान की रक्षा करने के दम भरते हैं, लेकिन फ़ासीवादी हमले के प्रतिरोध के एकमात्र उपाय जन प्रतिरोध को संगठित करने का कोई इरादा नहीं रखते। इस बार भी वित्त विधेयक के नाम पर यही किया गया है। इसके पारित हो जाने के बाद ये सब लोग राज्यसभा में थोड़ी रस्मी गाल बजाई वाली आलोचना-निन्दा कर चुप हो गये हैं, लेकिन आम मेहनतकश जनता के बीच फ़ासीवादी साजिश को बेनक़ाब कर उसके ख़िलाफ़ जन प्रतिरोध खड़ा करने की कोई पहलक़दमी इन जनवादी, उदारवादी या संसदीय वामपन्थियों के द्वारा नहीं की जा रही है।

भागो मत, तर्क करो!
तर्कसिद्ध को स्वीकार करो!

भक्ति नहीं, विचार करो!
जड़ता पर, प्रहार करो!

अध्ययन करो, व्यवहार करो!
ज्ञान का प्रसार करो!

भविष्य की पुकार सुनो!
नई क्रांति की राह चुनो!

सोवियत क्रान्ति के नेता लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) पर उनकी जीवनसाथी क्रुप्सकाया के संस्मरण के अंश

सेण्ट पीटर्सबर्ग का वह कार्यकाल जिसने लेनिन को मेहनतकश जनता के नेता के रूप में ढाला

1894-95 ई. के जाड़े में मैं व्लादीमिर इलिच के और निकट परिचय में आयी। वे उस समय नेव्सकाया ज़स्तावा ज़िले में मज़दूरों के अध्ययन मण्डलों में भाषण कर रहे थे। मैं इस ज़िले के स्मोलेंस्काया स्थान पर वयस्कों के लिए रविवारीय सान्ध्य विद्यालय में तीन वर्षों से अध्यापक का काम कर रही थी। जो मज़दूर व्ला. इ. लेनिन के अध्ययन मण्डलों में आते थे, उनमें से कई मेरी रविवारीय पाठशाला के विद्यार्थी थे, जैसे बाबुश्किन, बोरोव्कोव, ग्रिबाकिन, बोद्रोव भाई (आर्सेनी और फ़िलिप) तथा झुकोव। उन दिनों रविवारीय सान्ध्य पाठशाला श्रमिक वर्ग की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी, मज़दूरों के काम की स्थितियों और जनता के मिजाज़ का अध्ययन करने का अच्छा अवसर प्रदान करती थी। सान्ध्यकालीन तकनीकी कक्षाओं, महिलाओं की पाठशालाओं और ओबुखोव पाठशालाओं को, जो स्कूल से जुड़े थे, छोड़कर स्मोलेंस्काया स्कूल में छह सौ विद्यार्थी थे। मुझे कहना पड़ेगा कि मज़दूरों को अपनी पाठशाला की अध्यापिकाओं पर पूरा विश्वास था।...

वे मज़दूर, जो संगठन से सम्बद्ध थे, लोगों को जानने और ऐसे व्यक्तियों को जो संस्था और गोष्ठियों में लाये जा सकते हैं, चुनने के लिए स्कूल में जाते थे। ऐसे मज़दूर कार्यकर्ताओं की निगाह में अध्यापिकाएँ बस महिलाओं का एक समूह मात्र नहीं थीं। कौन अध्यापिका किस सीमा तक राजनीतिक नज़रिया रखती है, यह आँक लेने की क्षमता उनमें मौजूद थी। यदि वे पहचान लेते कि कोई अध्यापिका अपनों में से एक है तो उसे किसी शब्द या वाक्यांश से यह जता देते। जैसे दस्तकारी उद्योग पर बहस होते समय कोई मज़दूर कहता, "दस्तकारी मज़दूर बड़े पैमाने के उत्पादन का मुक़ाबला नहीं कर सकता" या वह कोई ऐसा सवाल पूछता जैसे "सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूर और आरखंगेल्स्क के किसान में क्या अन्तर है?" और इस सवाल के बाद वह अध्यापिका की ओर एक ख़ास अन्दाज़ में देखकर सिर हिलाता मानो कह रहा हो, "तुम अपनों में से ही एक हो, हम जानते हैं।"

यदि स्थानीय रूप से कुछ किया जा रहा था तो अध्यापिका को वे इसके बारे में फ़ौरन बता देते। वे जानते थे कि यह सूचना संगठन को दे दी जायेगी। इस विषय में उन लोगों में एक तरह का अलिखित समझौता था।...

मैं उन दिनों स्तारोनेव्स्की गली के एक ऐसे मकान में रहती थी, जिसके आर-पार सहन था। व्लादीमीर इलिच अपने क्षेत्र का कार्य समाप्त करके इतवार को वहाँ आते थे। उनके आने पर हमारी लम्बी-लम्बी न ख़त्म होने वाली बहसें शुरू होती थीं। मुझे पाठशाला का काम बहुत रुचिकर लगता था और मुझे अगर कोई न टोकता तो मैं उस विषय पर पाठशाला पर, विद्यार्थियों - सेम्यानीकोव, थॉर्नटन, मैक्सवेल पर तथा पड़ोस के दूसरे कारख़ानों और मिलों पर घण्टों बातें कर सकती थी।

व्लादीमिर इलिच को उस हर छोटी बात में दिलचस्पी थी, जो मज़दूरों की ज़िन्दगी और उनके हालात की तस्वीर को उभारने में मदद कर सके और जिसके सहारे वे क्रान्तिकारी प्रचार कार्य के लिए मज़दूरों से सम्पर्क क़ायम कर सकें। उस ज़माने के अधिकांश बुद्धिजीवी मज़दूरों को अच्छी तरह नहीं जानते थे। वे किसी अध्ययन मण्डल में आते और मज़दूरों के सामने एक तरह का व्याख्यान पढ़ देते। एंगेल्स की पुस्तक "परिवार व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति" का हस्तलिखित अनुवाद बहुत दिनों तक गोष्ठियों में घूमता रहा। व्लादीमिर इलिच मज़दूरों को मार्क्स का ग्रन्थ पूँजी पढ़कर सुनाते और उसे समझाते। वे अपने पाठ का आधा समय मज़दूरों से उनके काम और मज़दूरी के हालात के विषय में पूछने पर लगाते। और इस प्रकार उन्हें दिखाते और बताते कि उनकी ज़िन्दगी समाज के पूरे ढाँचे के लिए क्या महत्त्व रखती है तथा वर्तमान व्यवस्था को बदलने का उपाय क्या है? अध्ययन मण्डलों में सिद्धान्त को व्यवहार से इस प्रकार जोड़ना व्लादीमिर इलिच के कार्य की विशेषता थी। धीरे-धीरे हमारे अध्ययन मण्डलों के अन्य सदस्यों ने भी यह तरीक़ा अपना लिया।

अगले वर्ष जब हेक्टोग्राफ़ (साइक्लोस्टाइल जैसी मशीन) से 'आन्दोलन के बारे में' नामक परिपत्र प्रकाशित हुआ तो उस समय पर्चों द्वारा आन्दोलन करने की ज़मीन तैयार की जा चुकी थी। बात सिर्फ़ शुरू करने की थी। मज़दूरों को रोज़मर्रा की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर आन्दोलन करने की पद्धति ने हमारे दल के कार्यों में गहरी जड़ें जमा ली थीं। यह तरीक़ा कितना कारगर है, इसे ठीक से मैंने कुछ वर्षों बाद उस वक़्त समझा जब मैं फ्रांस में राजनीतिक निष्कासन का जीवन व्यतीत कर रही थी। मैंने देखा कि किस तरह पेरिस के डाक कर्मचारियों की महान हड़ताल के दौरान फ्रांसीसी समाजवादी पार्टी इससे बिल्कुल अलग रही। उनका कहना था कि हड़ताल का काम देखना ट्रेड यूनियनों का कार्य है। उनके अनुसार किसी पार्टी का कार्य राजनीतिक संघर्ष तक ही सीमित होता है। आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष को एक करने की आवश्यकता की कोई स्पष्ट धारणा उनके दिमाग़ में नहीं थी।

पर्चा आन्दोलन का प्रभाव देखकर, उस समय सेण्ट पीटर्सबर्ग में काम करने वाले कई साथी इतने अभिभूत हो गये कि वे यह भूल गये कि जनता में काम करने का यह कई रूपों में से सिर्फ़ एक रूप है - यह नहीं कि और तरीक़े हैं ही नहीं। इन लोगों ने कुख्यात अर्थवाद का रास्ता अपना लिया।

व्लादीमिर इलिच कभी नहीं भूले कि काम करने के तरीक़े और भी हैं। 1895 ई. में लेनिन ने "कारख़ानों के मज़दूरों पर किये गये जुर्मानों से सम्बद्ध नियम की एक व्याख्या" नामक परिचय लिखा। इस परिचय के ज़रिये उन्होंने उस समय एक औसत मज़दूर से सम्पर्क स्थापित करने, उसकी ज़रूरतों को समझते हुए उसे धीरे-धीरे राजनीतिक संघर्ष की आवश्यकता के सवाल से परिचित कराने की विधि का एक उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया। बहुत से बुद्धिजीवियों ने उस परिपत्र को उबाऊ और अनावश्यक रूप से विस्तृत समझा, लेकिन मज़दूरों ने उसे गहरी उत्सुकता से पढ़ा क्योंकि परिपत्र सुस्पष्ट और उनसे सुपरिचित था। यह नारोदनाया वोल्या मुद्रणालय से छपकर मज़दूरों में बँटा था। उन दिनों व्लादीमिर इलिच ने कारख़ाना क़ानून का सम्यक अध्ययन किया था। उनका विश्वास था कि कारख़ाना क़ानून के नियमों की व्याख्या करने से मज़दूरों को यह समझाना, कि उनकी स्थिति और राजनीतिक सत्ता के सम्बन्ध क्या हैं बहुत आसान हो गया। उस समय इलिच ने मज़दूरों के लिए जो कई लेख और परिपत्र लिखे, उनमें इस अध्ययन के सबूत मिलते हैं। विशेषतः "नया कारख़ाना क़ानून" नामक परिपत्र में तथा 'हड़ताल पर' और औद्योगिक अदालतों पर तथा अन्य लेखों में।

मज़दूरों के क्षेत्रों में आते-जाते रहने और काम करने का नतीजा यह हुआ कि हमारे ऊपर पुलिस की निगरानी बढ़ गयी। हम लोगों में व्लादीमिर इलिच काम करने के गुप्त तरीक़ों में सबसे ज़्यादा अनुभवी थे। वे रास्तों को भली-भाँति जानते थे और ख़ुफ़िया पुलिस को चकमा देने में उस्ताद थे। उन्होंने हमें न दिखाई पड़ने वाली रोशनाई इस्तेमाल करना, किताबों में संकेतिक नुक़्तों और 'गूढ़' लिपि में सन्देश लिखना सिखाया तथा हर तरह के गुप्त नाम रखे। लगता था कि जैसे वे नारोदनाया वोल्या तरीक़ों को भलीभाँति सीख चुके हैं। पुराने नारोदयायी मिखाइलोव का, जिन्हें लोगों ने 'द्वोरनिक' (रखवाला) नाम दे रखा था अपने प्रथम कोटि के रहस्यमय तरीक़ों की वजह से लेनिन द्वारा आदर पाना सकारण उचित था। इस बीच पुलिस की निगरानी बढ़ती जा रही थी और व्लादीमिर इलिच का आग्रह था कि उनका कोई ऐसा 'उत्तराधिकारी' नियुक्त किया जाना चाहिए जिसका पुलिस पीछा न करती हो और जो सारी ज़िम्मेदारियाँ सँभाल ले। चूँकि पुलिस की निगाह में मैं सबसे ज़्यादा 'पाक-साफ़' थी इसलिए मुझे ही उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय हुआ। ईस्टर इतवार को हममें से पाँच-छह लोग छुट्टी मनाने अपने एक सदस्य सिलिवन के पास ज़ारस्कोए सेलो गये जो वहाँ प्रशिक्षक (कोच) के रूप में रहता था। ट्रेन में सफ़र करते हुए हम लोगों ने एक-दूसरे से अपरिचित होने का बहाना किया।। हम क़रीब-क़रीब पूरे दिन उन कामों के विषय में बातें करते रहे जिन्हें चालू रहना था। व्लादीमिर इलिच ने हमें गूढ़ लिपि में लिखने की शिक्षा दी और हम लोगों ने क़रीब आधी किताब उसमें लिख डाली। मुझे कहते हुए अफ़सोस होता है कि मैं बाद में सामूहिक सांकेतिक-लेख को पढ़ने में नाकाम रही। सन्तोष की बात सिर्फ़ यही थी कि उस सांकेतिक लिपि को पढ़ने के समय तक अधिकांश 'सम्पर्क' बचे ही नहीं थे।

व्लादीमिर इलिच ने सब जगह से ऐसे लोगों की तलाश करके जो किसी न किसी रूप में क्रान्तिकारी कार्य में सहायक हो सकते थे, इन 'सम्पर्कों' को बनाया। मुझे एक ऐसी भेंट याद आती है जो व्लादीमिर इलिच के कहने पर हमारी टोली के प्रतिनिधियों (जहाँ तक मुझे याद है हमारे प्रतिनिधि व्लादीमिर इलिच और क्रझिझानोव्स्की थे) और रविवारीय स्कूल की अध्यापिकाओं की एक टोली के बीच हुई थी। इसके बाद उनमें से लगभग सभी सामाजिक जनवादी बन गये। उनमें नारोदनाया वोल्या की पुरानी सदस्या लिदिया क्निपोविच थीं जो सामाजिक जनवादी दल में शामिल हो गयी। पार्टी के पुराने सदस्य उन्हें याद करते हैं। वे आत्मानुशासित, अपने और दूसरों, दोनों के लिए कार्यतत्पर, शानदार साथी और महान क्रान्तिकारी आत्मानुशासन से युक्त महिला थीं। लोगों को पहचान लेने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। अपने साथियों के प्रति उनका व्यवहार विनम्रता और प्यार से भरा हुआ होता था। लिदिया ने व्लादीमिर इलिच के क्रान्तिकारी रूप को फ़ौरन पहचान लिया।

लिदिया ने नारोदनाया वोल्या मुद्रणालय के सारे काम सँभाल लेने की ज़िम्मेदारी ले ली। वे छपाई का सारा इन्तज़ाम करती थीं, पाण्डुलिपियाँ दे आती थीं, छपे हुए परिपत्रों को छुड़ाती थीं, टोकरियों में उन्हें मित्रों के पास ले जाती थीं और मज़दूरों के बीच साहित्य के वितरण की व्यवस्था करती थीं। मुद्रणालय के एक मुद्रक के विश्वासघात करने से जब वे गिरफ़्तार की गयीं तो, उनके विभिन्न मित्रों के यहाँ से बारह टोकरी ग़ैरक़ानूनी साहित्य बरामद हुआ। उस समय नारोदोवोल्त्सी लोग मज़दूरों के लिए परिपत्रों का जन-संस्करण छापते थे। कुछ परिपत्र इस प्रकार थे - 'काम का दिन', 'जीवन और हित' तथा व्लादीमिर इलिच के परिपत्र 'जुर्मानों के बारे में' तथा 'बादशाह भूख' इत्यादि। शपोवालोव और कतान्स्काया नामक दो नारोदोवोल्त्सी जो लाख्तीन्एकी छपाईखाने में काम करते थे, अब (1930 - सं.) कम्युनिस्ट पार्टी में हैं। लिदिया क्निपोविच अब जीवित नहीं हैं। क्रीमिया में जहाँ वे दो वर्षों से निवास कर रही थी, उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय क्रीमिया श्वेत गार्डों के अधिकार में था। मृत्युशैया पर भी उनका दिलो-दिमाग़ कम्युनिस्टों के साथ ही था और मरते समय उनके होठों पर कम्युनिस्ट पार्टी का नाम था।

मेरे ख़याल से उस सम्मेलन में शामिल होने वाले अन्य लोगों में स्कूली शिक्षक प.फ़. कुदैली, अ.इ. मेशेचर्याकोवा (दोनों अब पार्टी के मेम्बर हैं) शामिल थे। नेव्सकाया ज़ास्तावा की अध्यापिकाओं में से एक थीं अलेक्सान्द्रा काल्माइकोवा। वे एक बेहतरीन अध्यापिका थीं - मज़दूरों के बीच राज्य बजट पर दिया गया उनका भाषण मुझे अब तक याद है। लिटिनी स्ट्रीट पर उनकी एक पुस्तकों की दुकान थी। उन्हीं दिनों व्लादीमिर इलिच से उनका घनिष्ठ परिचय हो गया। स्त्रूवे उनके शिष्यों में से था और उनका पुराना स्कूल-साथी पोत्रोसोव उनके यहाँ अक्सर आया करता था। बाद में अलेक्सान्द्रा काल्माइकोवा ने पुराने 'इस्क्रा' की आर्थिक ज़िम्मेदारी द्वितीय कांग्रेस की अवधि तक सँभाली। स्त्रूवे के उदारवादियों से मिल जाने पर उन्होंने उनका साथ नहीं दिया बल्कि दृढ़ता से ईस्क्रावादी दल के साथ रहीं। उन्हें लोग 'चाची' कहकर बुलाते थे। व्लादीमिर इलिच से उनकी बहुत मित्रता थी।...

व्लादीमिर इलिच ने 1895 का ग्रीष्म काल देश के बाहर बिताया। वे कुछ समय के लिए बर्लिन में रहे जहाँ मज़दूरों की सभाओं में शामिल हुए और कुछ समय के लिए स्विट्ज़रलैण्ड में रहे जहाँ पहली बार उनकी भेंट प्लेख़ानोव, अक्सेलरोद और ज़ासुलिच से हुई। वे अपने ऊपर बहुत से नये प्रभाव और दो अस्तरों वाला एक सूटकेस भरकर ग़ैरक़ानूनी साहित्य लेकर वापस आये।

जिस क्षण वे रूस पहुँचे पुलिस ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया। पुलिस की निगाह उन पर और उनके सूटकेस पर थी। उस समय मेरी एक चचेरी बहन 'पता विभाग' में काम करती थी। उसने बताया कि व्लादीमिर इलिच के आने के दो दिन बाद जब वह रात की ड्यूटी पर थी, तो एक जासूस आया और वर्णक्रम के अनुसार रखी हुई फ़ाइलों को यह कहते हुए देख गया कि "हम लोगों ने राज्य के एक महत्त्वपूर्ण अपराधी का पता लगा लिया है। उसका नाम उल्यानोव है। इसका भाई फाँसी पर लटकाया गया था और यह विदेश से होकर आया है। अब यह बचने नहीं पायेगा।" चूँकि मेरी बहन जानती थी कि व्लादीमिर इलिच मेरे परिचित हैं इसलिए इस बात की इत्तला उसने मुझे फ़ौरन दी। ज़ाहिर है कि व्लादीमिर इलिच को मैंने फ़ौरन आगाह कर दिया। उस समय अत्यधिक सतर्कता की ज़रूरत थी, लेकिन काम तो इन्तज़ार नहीं कर सकता था। हम कार्य में व्यस्त रहे। काम का बँटवारा कर लिया गया और क्षेत्रों में काम बाँट

(पेज 12 पर जारी)

ग़रीबी दूर करने का एक ही रास्ता - समाजवादी व्यवस्था

- लेनिन

एक तरफ़, धन और ऐशो-आराम बराबर बढ़ते जा रहे हैं और दूसरी तरफ़, करोड़ों-करोड़ आदमी, जो अपनी मेहनत से उस सारे धन को पैदा करते हैं, निर्धन और बेघरबार बने रहते हैं। किसान भूखों मरते हैं, मज़दूर बेकार हो इधर-उधर भटकते हैं, जबकि व्यापारी करोड़ों पूद* अनाज रूस से बाहर दूसरे देशों में भेजते हैं और कारख़ाने तथा फ़ैक्टरियाँ इसलिए बन्द कर दी जाती हैं कि माल बेचा नहीं जा सकता, उसके लिए बाज़ार नहीं है।

इसका कारण सबसे पहले यह है कि अधिकतर ज़मीन, सभी कल-कारख़ाने, वर्कशॉप, मशीनें, मकान, जहाज़, इत्यादि थोड़े-से धनी आदमियों की मिल्कियत हैं। करोड़ों आदमी इस ज़मीन, इन कारख़ानों और वर्कशॉपों में काम करते हैं, लेकिन ये सब कुछ हज़ार या दसियों हज़ार धनी लोगों - ज़मींदारों, व्यापारियों और मिल-मालिकों के हाथ में हैं। ये करोड़ों लोग इन धनी आदमियों के लिए मजूरी पर, उजरत पर, रोटी के एक टुकड़े के वास्ते काम करते हैं। जीने भर के लिए जितना ज़रूरी है, उतना ही मज़दूरों को मिलता है। उससे अधिक जितना पैदा किया जाता है, वह धनी मालिकों के पास जाता है। वह उनका नफ़ा, उनकी "आमदनी" है। काम के तरीक़ों में सुधार से और मशीनों के इस्तेमाल से जो कुछ फ़ायदा होता है, वह ज़मींदारों और पूँजीपतियों की जेबों में चला जाता है: वे बेशुमार धन जमा करते हैं और मज़दूरों को चन्द टुकड़ों के सिवा कुछ नहीं मिलता। काम करने के लिए मज़दूरों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है: एक बड़े फ़ार्म या बड़े कारख़ाने में कितने ही हज़ार मज़दूर एक साथ काम करते हैं। जब इस तरह से मज़दूर इकट्ठा कर दिये जाते हैं और जब विभिन्न प्रकार की मशीनें इस्तेमाल की जाती हैं, तब काम अधिक उत्पादनशील होता है: बिना मशीनों के, अलग-अलग काम करके बहुत-से मज़दूर जितना पहले पैदा करते थे, उससे कहीं अधिक आजकल एक अकेला मज़दूर पैदा करने लगा है। लेकिन काम के अधिक उत्पादनशील होने का फल सभी मेहनतकशों को नहीं मिलता, वह मुट्ठी भर बड़े-बड़े ज़मींदारों, व्यापारियों और मिल-मालिकों की जेबों में पहुँच जाता है।

अक्सर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि ज़मींदार या व्यापारी लोगों को "काम **देते हैं**" या वे ग़रीबों को रोज़गार "देते हैं"। मिसाल के लिए, कहा जाता है कि पड़ोसी कारख़ाना या पड़ोस का बड़ा फ़ार्म स्थानीय किसानों की **''परवरिश करता है''**। लेकिन असल में मज़दूर अपनी मेहनत से ही अपनी **परवरिश करते हैं** और उन सबको खिलाते हैं, जो ख़ुद काम नहीं करते। लेकिन ज़मींदार के खेत में, कारख़ाने या रेलवे में काम करने की **इजाज़त पाने के लिए** मज़दूर को वह सब **मुफ़्त में** मालिक को **दे देना** पड़ता है, जो वह पैदा करता है, और उसे केवल नाममात्र की मजूरी मिलती है। इस तरह असल में न ज़मींदार और न व्यापारी मज़दूरों को काम देते हैं, बल्कि मज़दूर अपने श्रम के फल का अधिकतर हिस्सा मुफ़्त में देकर सबके भरण-पोषण का भार उठाते हैं।

आगे चलिए। सभी आधुनिक देशों में जनता की ग़रीबी इसलिए पैदा होती है कि मज़दूरों के श्रम से जो तरह-तरह की चीज़ें पैदा की जाती हैं, वे सब बेचने के लिए, मण्डी के लिए होती हैं। कारख़ानेदार और दस्तकार, ज़मींदार और धनी किसान जो कुछ भी पैदा करवाते हैं, जो पशु पालन करवाते हैं, या जिस अनाज की बोवाई-कटाई करवाते हैं, वह सब **मण्डी में बेचने के लिए**, बेचकर **रुपया** प्राप्त करने के लिए होता है। अब रुपया ही हर जगह राज करने वाली ताक़त बन गया है। मनुष्य की मेहनत से जो भी माल पैदा होता है, सभी को रुपये से बदला जाता है। रुपये से आप जो भी चाहें, ख़रीद सकते हैं। रुपया आदमी को भी ख़रीद सकता है, अर्थात जिस आदमी के पास कुछ नहीं है, रुपया उसे रुपयेवाले आदमी के यहाँ काम करने के लिए मजबूर कर सकता है। पुराने समय में, भूदास प्रथा के ज़माने में, भूमि की प्रधानता थी। जिसके पास भूमि थी, वह ताक़त और राज-काज, दोनों का मालिक था। अब रुपये की, पूँजी की प्रधानता हो गयी है। रुपये से जितनी चाहे ज़मीन ख़रीदी जा सकती है। रुपये न हों, तो ज़मीन भी किसी काम की नहीं रहेगी, क्योंकि हल अथवा अन्य औज़ार, घोड़े-बैल ख़रीदने के लिए रुपयों की ज़रूरत पड़ती है; कपड़े-लत्ते और शहर के बने दूसरे आवश्यक सामान ख़रीदने के लिए, यहाँ तक कि टैक्स देने के लिए भी रुपयों की ज़रूरत होती है। रुपया लेने के लिए लगभग सभी ज़मींदारों ने बैंक के पास ज़मीन रेहन रखी। रुपया पाने के लिए सरकार धनी आदमियों से और सारी दुनिया के बैंक-मालिकों से क़र्ज़ा लेती है और हर वर्ष इन क़र्ज़ों पर करोड़ों रुपये सूद देती है।

रुपये के वास्ते आज सभी लोगों के बीच भयानक आपसी संघर्ष चल रहा है। हर आदमी कोशिश करता है कि सस्ता ख़रीदे और महँगा बेचे। हर आदमी होड़ में दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है। अपने सौदे को जितना हो सके, उतना ज़्यादा बेचना और दूसरे की क़ीमतों से कम क़ीमतों पर बेचकर, लाभवाले बाज़ार या लाभवाले सौदे को दूसरे से छिपाकर रखना चाहता है। रुपये के लिए सर्वत्र होने वाली इस हाथापाई में छोटे लोग, छोटे दस्तकार या छोटे किसान ही सबसे ज़्यादा घाटे में रहते हैं : होड़ में वे बड़े व्यापारियों या धनी किसानों से सदा पीछे रह जाते हैं। छोटे आदमी के पास कभी कुछ बचा नहीं होता। वह आज की कमाई को आज ही खाकर जीता है। पहला ही संकट, पहली ही दुर्घटना उसे अपनी आखिरी चीज़ तक को गिरवी रखने के लिए या अपने पशु को मिट्टी के मोल बेच देने के लिए लाचार कर देती है। किसी कुलक या साहूकार के हाथ में एक बार पड़ जाने पर वह शायद ही अपने को उनके चंगुल से निकाल पाये। बहुधा उसका सत्यानाश हो जाता है। हर साल हज़ारों-लाखों छोटे किसान और दस्तकार अपने झोंपड़ों को छोड़कर, अपनी ज़मीन को मुफ़्त में ग्राम-समुदाय के हाथ में सौंपकर उजरती मज़दूर, खेत-बनिहार, अकुशल मज़दूर, सर्वहारा बन जाते हैं। लेकिन धन के लिए इस संघर्ष में धनी का धन बढ़ता जाता है। धनी लोग करोड़ों रूबल बैंक में जमा करते जाते हैं। अपने धन के अलावा बैंक में दूसरे लोगों द्वारा जमा किये गये धन से भी वे मुनाफ़ा कमाते हैं। छोटा आदमी दसियों या सैकड़ों रूबल पर, जिन्हें वह बैंक या बचत-बैंक में जमा करता है, प्रति रूबल तीन या चार कोपेक सालाना सूद पायेगा। धनी आदमी इन दसियों रूबल से करोड़ों बनायेगा और करोड़ों से अपना लेन-देन बढ़ायेगा तथा एक-एक रूबल पर दस-बीस कोपेक कमायेगा।

इसीलिए सामाजिक-जनवादी** मज़दूर कहते हैं कि जनता की ग़रीबी को दूर करने का एक ही रास्ता है - मौजूदा व्यवस्था को नीचे से ऊपर तक सारे देश में बदलकर उसके स्थान पर **समाजवादी व्यवस्था** क़ायम करना। दूसरे शब्दों में, बड़े ज़मींदारों से उनकी जागीरें, कारख़ानेदारों से उनकी मिलें और कारख़ाने और बैंकपतियों से उनकी पूँजी छीन ली जाये, उनके **निजी स्वामित्व** को ख़त्म कर दिया जाये और उसे देश-भर की समस्त श्रमजीवी जनता के हाथों में दे दिया जाये। ऐसा हो जाने पर धनी लोग, जो दूसरों के श्रम पर जीते हैं, मज़दूरों के श्रम का उपयोग नहीं कर पायेंगे, बल्कि उसका उपयोग स्वयं मज़दूर तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे। ऐसा होने पर साझे श्रम की उपज तथा मशीनों और सभी सुधारों से प्राप्त होने वाले लाभ तमाम श्रमजीवियों, सभी मज़दूरों को प्राप्त होंगे। धन और भी जल्दी से बढ़ना शुरू होगा, क्योंकि जब मज़दूर पूँजीपति के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए काम करेंगे, तो वे काम को और अच्छे ढंग से करेंगे। काम के घण्टे कम होंगे। मज़दूरों का खाना-कपड़ा और रहन-सहन बेहतर होगा। उनकी गुज़र-बसर का ढंग बिल्कुल बदल जायेगा।

लेकिन सारे देश के मौजूदा निज़ाम को बदल देना आसान काम नहीं है। इसके लिए बहुत ज़्यादा काम करना होगा, दीर्घ काल तक दृढ़ता से संघर्ष करना होगा। तमाम धनी, सभी सम्पत्तिवान, सारे **बुर्जुआ***** अपनी सारी ताक़त लगाकर अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा करेंगे। सरकारी अफ़सर और फ़ौज सारे **धनी वर्ग** की रक्षा के लिए खड़ी होगी, क्योंकि सरकार ख़ुद धनी वर्ग के हाथ में है। मज़दूरों को परायी मेहनत पर जीने वालों से लड़ने के लिए आपस में मिलकर एक होना चाहिए; उन्हें ख़ुद एक होना चाहिए और सभी सम्पत्तिहीनों को एक ही **मज़दूर वर्ग**, एक ही **सर्वहारा वर्ग** के भीतर ऐक्यबद्ध करना चाहिए। मज़दूर वर्ग के लिए यह लड़ाई कोई आसान काम नहीं होगी, लेकिन अन्त में मज़दूरों की विजय होकर रहेगी, क्योंकि बुर्जुआ वर्ग - वे लोग, जो परायी मेहनत पर जीते हैं - सारी जनता में नगण्य अल्पसंख्या है, जबकि मज़दूर वर्ग गिनती में सबसे ज़्यादा है। सम्पत्तिवानों के खिलाफ़ मज़दूरों के खड़े होने का अर्थ है हज़ारों के खिलाफ़ करोड़ों का खड़ा होना।

----

* एक पूद में 16 किलोग्राम होते हैं।

** उस समय कम्युनिस्ट सामाजिक-जनवादी कहलाते थे।

*** बुर्जुआ का अर्थ है पूँजीवादी सम्पत्ति का मालिक। सम्पत्ति के सभी मालिकों को बुर्जुआ वर्ग कहते हैं। बड़ा बुर्जुआ वह है, जिसके पास बहुत सम्पत्ति होती है। टुटपुँजिया बुर्जुआ वह है, जिसके पास कम सम्पत्ति होती है। बुर्जुआ तथा सर्वहारा शब्दों का अर्थ है सम्पत्ति के मालिक तथा मज़दूर, धनी और सम्पत्तिहीन, अथवा वे लोग, जो अन्य लोगों के श्रम पर जीते हैं और वे लोग, जो उजरत के लिए दूसरों के वास्ते काम करते हैं।

(लेनिन की प्रसिद्ध पुस्तिका 'गाँव के ग़रीबों से' का एक अंश)

लेनिन के जन्मदिवस पर क्रुप्सकाया का संस्मरण

(पेज 11 से आगे)

दिया गया। हमने पर्चे लिखने और बाँटने शुरू कर दिये। मुझे याद है कि सेमियानीकोव कारख़ाने के मज़दूरों के लिए व्लादीमिर इलिच ने पहला पर्चा लिखा था। उस समय हमें छपाई की सुविधा नहीं थी। पर्चे की नक़ल हाथ से छापकर की जाती थी। उनका वितरण बाबुश्किन करते थे। चार कापियों में से दो चौकीदार ले लेते थे और बाक़ी दो हाथों हाथ बाँटी जाती थी। पर्चे अन्य क्षेत्रों में भी बाँटे जाते थे। लाफ़र में तम्बाकू कारख़ाने की महिला-श्रमिकों के लिए एक पर्चा वासिल्यवस्की द्वीप भेजा जाता था। अ.अ. याकैबोवा और ज.प. नेवज़ोरोवा (क्रिझिझनोव्स्काया) पर्चों को वितरित करने के लिए जो तरीक़ा अपनाती थी। वह इस प्रकार था - वे पर्चों को इस ढंग से लपेट लेते कि आसानी से एक-एक करके निकाले जा सकें। फिर सीटी बजते ही कारख़ाने के दरवाज़ों में से प्रवाह की भाँति निकलती हुई मज़दूरनियों की भीड़ के पास तेज़ी से पहुँच एक साँस में हैरत में पड़ी हुई औरत के हाथ में पर्चा दे देते थे। ये पर्चे अत्यन्त सफल साबित हुए।

हमारे पर्चों और परिपत्रों ने मज़दूरों को जगा दिया। चूँकि हम लोगों के पास एक ग़ैर-क़ानूनी छापाखाना था, इसलिए यह तय किया गया कि राबोचयेदेलो (मज़दूरों का हित) नामक एक पत्रिका भी निकाली जाये। व्लादीमिर इलिच ने इसके लिए सारी सामग्री पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर दी। पत्रिका की कापी की एक-एक पंक्ति वे देखते थे। मुझे अपने निवास पर हुई एक मीटिंग याद आती है जिसमें मोस्कोव्स्काया जास्तावा के पास स्थित एक जूते के कारख़ाने से पत्रिका के लिए कुछ सामग्री ले आने पर जापोरोजेत्स ख़ुशी में मगन हो रहे थे। वे कह रहे थे "वहाँ (कारख़ाने में) हर बात पर जुर्माना होता है, अगर जूते की एड़ी ज़रा-सा टेढ़ी हो जाये तो फ़ौरन जुर्माना कर दिया जाता है।" व्लादीमिर इलिच हँसे और बोले "अगर कोई एड़ी टेढ़ी कर देता है तो वह जुर्माने का काम तो करता ही है।" वे पूरी सामग्री का संग्रह और उनकी जाँच अत्यन्त सावधानी के साथ करते थे। उदाहरण के लिए मुझे याद है, कि थॉर्नटन मिल के विषय में सामग्री कैसे जुटाई गयी थी। मुझे अपने विद्यार्थी क्रोलिकोव के पास जाकर व्लादीमिर इलिच की बनायी हुई योजना के अनुसार सारी सूचनाएँ हासिल करनी थीं (वह एक बार सेण्ट पीटर्सबर्ग से निष्कासित किया जा चुका था और मिल में छटाई करने का काम करता था)। क्रोलिकोव किसी से माँगा हुआ फ़र का एक भड़कीला कोट पहनकर आया। उसके पास एक पूरी किताब-भर के लिखे हुए नोट्स थे और उसने कई बातें ज़ुबानी बतायीं। उसकी दी हुई सूचनाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं। व्लादीमिर इलिच ने उन्हें फ़ौरन लपक लिया। बाद में अ.अ. याकूबोवा और मैं मिल मज़दूरों जैसा दिखने के लिए अपने सिरों को शाल से ढँककर थॉर्नटन मिल के रिहायशी मकानों में गये। हम विवाहित और अविवाहित दोनों प्रकार के क्वार्टरों में गये। वहाँ की हालत बहुत बुरी थी। इस प्रकार से प्राप्त सच्ची सूचना के आधार पर ही व्लादीमिर इलिच समाचार छापते और पर्चे लिखते थे। थॉर्नटन मिल के स्त्री-पुरुष कर्मचारियों के लिए जो पर्चा उन्होंने लिखा है, उसे देखिए। अपने विषय की कितनी पूर्ण जानकारी उससे प्रकट होती है। जो साथी उन दिनों काम कर रहे थे, वे इससे कितने प्रशिक्षित होते थे। यह तब हुआ जब हमने सचमुच तफ़सील पर ध्यान देना शुरू किया। उन तफ़सीलों का हमारे दिमाग़ों पर कितना गहरा असर पड़ा है।

हमारा 'राबोचिए' निकल नहीं पाया। 8 दिसम्बर को मेरे कमरे में मीटिंग हुई जिसमें प्रेस में दी जाने वाली सामग्री का अन्तिम रूप पढ़ा गया। वानेएव आखिरी बार देखने के लिए उसकी प्रतिलिपि अपने साथ ले गया। एक प्रतिलिपि मेरे पास रह गयी। दूसरे दिन सुबह जब मैं ठीक की हुई कापी लेने वानेएव के पास गयी तो नौकर ने बताया कि वह रात को ही कहीं चला गया है। व्लादीमिर इलिच से पहले ही तय कर लिया गया था कि कुछ गड़बड़ी हो जाये तो मुझे उनके दोस्त चेवोतारयोव से पूछताछ करनी चाहिए। चेवोतारयोव केन्द्रीय रेलवे प्रशासन

(पेज 13 पर जारी)

गौरक्षा के नाम पर मानव हत्याएँ, जनसेवा के नाम पर अडानी-अम्बानी की सेवा – यही है फासीवादी संघी सरकार का असली चेहरा

– सत्यनारायण

पिछली 1 अप्रैल को राजस्थान में एक मुस्लिम किसान को गौरक्षक गुण्डा दलों ने पीट-पीटकर मार दिया। हरियाणा के मेवात का ये डेयरी किसान पहलू खान 1 अप्रैल के दिन जयपुर के प्रसिद्ध साप्ताहिक हटवाड़ा पशु मेले से डेयरी यानी दूध के कारोबार के लिए गाय ख़रीदकर आ रहा था। ये मेला काफ़ी प्रसिद्ध है और यहाँ ज़्यादातर दुधारू पशु आते हैं। मध्यप्रदेश, हरियाणा तक के पशुपालक यहाँ पशु ख़रीदते हैं। पहलू खान के पास गाय ख़रीदने की रसीद और अन्य काग़ज़ात भी मौजूद थे। बस उसकी एक ही ग़लती थी और वो थी मुसलमान होना। अपने आप को गौरक्षक कहने वाले गुण्डों ने उनकी गाड़ी का पीछा करके पकड़ लिया। उन्होंने पिकअप वैन के ड्राइवर (जो कि हिन्दू था) को जाने दिया और पहलू खान, उसके बेटों और दो अन्य लोगों को बुरी तरह मारा-पीटा। इसी पिटाई से पहलू खान की मौत हो गयी और दो अन्य लोग बुरी तरह ज़ख़्मी हुए। ये गुण्डे इतने बेख़ौफ़ थे कि बाकायदा इस वीभत्स घटना का वीडियो बनाकर उसे व्हाट्सऐप आदि पर डाल दिया। यह घटना ऐसी तमाम घटनाओं के सिलसिले की एक और भयानक कड़ी है।

पूरे देश में संघ परिवार (आरएसएस) से जुड़े संगठनों ने पिछले लम्बे समय से गौरक्षा दल खड़े किये हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य गाय के नाम पर जनता में साम्प्रदायिक भावनाएँ फैलानी हैं। इनके आतंक की वजह से बहुत सारी जगहों पर किसानों ने गाय ख़रीदना छोड़कर भैंस ख़रीदना शुरू कर दिया है क्योंकि ये घर के लिए दुधारू गाय ले जाते किसानों को भी पकड़कर मारते हैं। यहाँ तक कि मरे पशुओं की खाल उतारने वाले दलितों को भी मारते हैं। 2 अगस्त 2014 को दिल्ली में शंकर कुमार को इन्होंने जान से मार दिया था। शंकर कुमार दिल्ली महानगरपालिका की उस कॉण्ट्रेक्टर कम्पनी का कर्मचारी था, जिसका काम मरे हुए पशु उठाना था। उस दिन भी वो मरे हुए पशु अपनी गाड़ी में ला रहा था, पर उस पर इन गौरक्षकों का कहर बरपा। ऊना, गुजरात में कुछ महीने पहले चार दलित नौजवानों की बर्बर पिटाई की घटना भी आप सबको याद ही होगी। पिछले ही महीने दिल्ली में शर्मिला नाम की एक महिला को इन गौरक्षक गुण्डों ने बुरी तरह मारा, क्योंकि जब उस महिला की तरफ़ गाय भागी तो उसने बचने के लिए उसकी तरफ़ पत्थर फेंक दिया था। सितम्बर 1915 में उत्तर प्रदेश के दादरी में गोमांस की अफ़वाह उड़ाकर अख़लाक़ की उसके परिवार के सामने पीट-पीटकर हत्या और उसके बाद भाजपा सरकार के केन्द्रीय मन्त्री और विधायकों द्वारा हत्यारों का महिमामण्डन करने की घटनाओं को देश भूला नहीं है। मार्च 2016 में झारखण्ड के लातेहार में गौ-गुण्डों ने 14 साल के एक बच्चे सहित दो मुस्लिम पशु कारोबारियों को मारकर पेड़ पर लटका दिया था।

भारत के ज़्यादातर राज्यों में गाय की हत्या पर पहले से ही प्रतिबन्ध है और बीफ़ के नाम पर जो मांस मिलता है वो भैंस का होता है। ये बात हर कोई जानता है पर नरेन्द्र मोदी ने 2014 के चुनाव प्रचार से पहले इसे बड़ा मुद्दा बनाकर जनता को गुमराह किया। मोदी ने कहा कि गाय की हत्या हो रही है और भारत का मांस निर्यात लगातार बढ़ रहा है। लोगों को लग रहा था कि सत्ता में आते ही मोदी ये मांस निर्यात रोक देंगे। लेकिन सत्ता में आने के बाद मोदी का असली चेहरा भी सामने आ गया और उन्होंने चीन को भारत से सीधे बीफ़ ख़रीदने की पेशकश कर दी। चीन अभी तक भारत का बीफ़ वियतनाम के रास्ते ख़रीदता रहा है, पर मोदी के "कड़े प्रयासों" से जनवरी 2017 यानी इसी साल के शुरू में चीन भारत से सीधे बीफ़ ख़रीदने पर राजी हो गया है। चीन के अधिकारियों ने भारत का दौरा कर 14 पशुवधगृह भी तय कर दिये हैं जिनसे ये बीफ़ ख़रीदा जायेगा। हाल ही में यूपी की योगी सरकार द्वारा अवैध पशुवधगृहों पर लगी रोक को भी इसी रोशनी में समझा जा सकता है। जब सरकारी तौर पर अधिकृत पशुवधगृह कम होंगे और सारे अवैध बन्द हो जायेंगे, तभी तो उनको किसानों की भैंस सस्ते में मिलेगी। ये वैसा ही है, जैसा रिलायंस फ्रेश का स्टोर खुलवाने के लिए अवैध के नाम पर सब्ज़ी की छोटी दुकानों, रेहड़ी, पटरी वालों को हटा दिया जाये। स्पष्ट है कि ये भावना भड़काकर बड़े पूँजीपतियों की ही सेवा कर रहे हैं।

पिछले लम्बे समय से आरएसएस से जुड़े संगठनों ने भावनाओं को भड़काकर जगह-जगह गौरक्षा के नाम पर गुण्डा दल खड़े किये हैं। इण्टरनेट पर ये गौरक्षा दल लोगों की बर्बर तरीक़े से पिटाई के वीडियो डालते हैं और इनके खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं होती है। ये वीडियो आपको इस्लामिक स्टेट के आतंकियों के वीडियो जैसे ही लगेंगे, बशर्ते आपके अन्दर इंसानियत बाक़ी हो।

सवाल है कि क्या सच में इनका मक़सद गाय की रक्षा करना है? अगर देखा जाये तो जिन-जिन राज्यों में गौरक्षा के क़ानून लागू हुए, गौरक्षा दलों का आतंक बढ़ा, वहाँ के किसानों ने गाय की जगह भैंस पालना शुरू कर दिया, क्योंकि किसान के लिए पशुपालन भावना का नहीं बल्कि आर्थिक सहारे का मसला है। हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान जैसे राज्यों में भैंसों की तादाद गायों से कहीं ज़्यादा है। महाराष्ट्र में गौहत्या पर तो पहले से ही बैन था, पर देवेन्द्र फ़डनवीस की सरकार ने बैलों और साण्डों की हत्या पर भी बैन लगा दिया, जिसकी वजह से गौवंश का पूरा मार्केट तबाह हो गया है। किसानों के लिए बैल ख़रीदना नुक़सान का सौदा बन गया है। पूरे महाराष्ट्र में इस समय 7.5 लाख आवारा गौवंश खुले घूम रहे हैं और गाँवों-शहरों में एक्सीडेण्ट करवाने के साथ-साथ गाँवों में किसानों की फ़सलों को बर्बाद कर रहे हैं।

इन गौरक्षकों को शहरों में कूड़े के ढेरों पर मुँह मारती हुई और पॉलीथीन की थैलियाँ खाकर हर साल हज़ारों की संख्या में मरती हुई गायें अपनी "माता" नहीं नज़र आतीं। राजस्थान में भाजपा शासन में पिछले वर्ष एक सरकारी गौशाला में गन्दगी और चारे की कमी से 50 से ऊपर गायें मर गयीं, तब इनका माता प्रेम नहीं जागा!

ज़ाहिर है कि इस पूरी गुण्डागर्दी के पीछे कहीं से भी गायों का भला करना नहीं है, बल्कि समाज में लगातार बढ़ रही आर्थिक खाई से ध्यान भटकाना है। 29 मार्च को ही मोदी सरकार ने लोकसभा में बताया था कि उन्होंने 2013 के मुकाबले 2015 में 90 प्रतिशत सरकारी नौकरियाँ ख़त्म कर दी हैं। बेरोज़गारी अपने चरम पर है, तमाम सारी प्राइवेट कम्पनियाँ छँटनी कर रही हैं। स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया का मासिक न्यूनतम बैलेंस बढ़ाकर पैसा जमा किया जा रहा है ताकि उद्योगपतियों को लोन दिया जा सके या फिर डिफ़ॉल्टर्स के कारण पैदा हुए बुरे लोन को कम किया जा सके। रेलवे जैसे महत्वपूर्ण सेक्टर को बेचने की शुरुआत हो चुकी है। हबीबगंज, भोपाल का स्टेशन बंसल नाम के व्यापारी को बेच दिया गया है। मोदी के क़रीबी गौतम अडानी की सम्पति 2014-2015 में दोगुना हो गयी थी।

ऐसे हालात में आर्थिक मुद्दों से ध्यान हटाने के लिए मोदी सरकार कभी गौरक्षा तो कभी लवजिहाद तो कभी राममन्दिर जैसे भावनात्मक मुद्दे उठाकर जनता को गुमराह कर रही है। हमें इनकी असलियत को समझना होगा, अन्यथा हमारा देश भी उसी राह पर चल पड़ेगा, जिस राह पर आज अन्य धार्मिक कट्टरपन्थी देश चल रहे हैं। तालिबान भी जब अफ़गानिस्तान में आया था, तो इसी तरह धर्म के नाम पर लोगों को ब्लैकमेल करते हुए आया था और उसके बाद उसने वहाँ क्या किया, ये सबको मालूम है। पाकिस्तान में भी 14 अप्रैल के दिन मरदान विश्वविद्यालय में एक छात्र को हज़ारों की भीड़ ने ईशनिन्दा के नाम पर पीट-पीटकर मार डाला। ज़ाहिर है कि अगर धर्म का सार्वजनिक जीवन में प्रवेश होगा तो इस तरह की घटनाएँ ही सामने आयेंगी।

हमारे देश के महान शहीद भगतसिंह ने कहा था - "लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो।"

शहीद भगतसिंह की बात को ध्यान में रखते हुए हमें आज इन संघी फासीवादियों की असलियत समझने की ज़रूरत है। ये नाम तो हिन्दू धर्म का लेते हैं पर इनका असली धर्म अडानी, अम्बानी, ज़िन्दल, मित्तल का मुनाफ़ा है। जब भी ये धर्म का नाम लेकर हमारे बीच आयें तो इनकी आर्थिक नीति पूछने की ज़रूरत है। हमें ये ध्यान रखने की ज़रूरत है कि अगर हम आज नहीं सँभले तो हमारी आगे आने वाली पीढ़ियाँ इसकी क़ीमत चुकायेंगी।

लेनिन...

(पेज 12 से आगे)

के स्टाफ़ में मेरे साथ काम करता था। व्लादीमिर इलिच उसके यहाँ रोज़ भोजन करने जाते थे। चेवोतारयोव अपने दफ़्तर में नहीं था। मैं उसके घर गयी। व्लादीमिर इलिच भोजन करने वहाँ नहीं पहुँचे थे। स्पष्टतः वे गिरफ़्तार हो गये थे। बाद में दिन में पता चला कि हमारे दल के कई लोग गिरफ़्तार कर लिये गये हैं। 'राबोचिए' की जो प्रति मेरे पास थी उसे सुरक्षा के लिए नीनाजर्द को दे दिया। नीना स्कूल की मेरी पुरानी दोस्त थी, बाद में उसकी स्त्रूव से शादी हो गयी। हममें से और लोग गिरफ़्तार न कर लिये जाये, इसलिए तय हुआ कि राबोचिए फ़िलहाल न निकाला जाये।

यद्यपि व्लादीमिर इलिच के सेण्ट पीटर्सबर्ग के इस निवास काल का कार्य उल्लेखनीय या ऊपर से देखने में कुछ ख़ास नहीं है। फिर भी वास्तविक रूप में यह काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। ख़ुद उन्होंने भी इसे महत्त्वपूर्ण कहा है। यह दिखायी पड़ने वाला काम नहीं था। यह वीरनायकोचित कारनामों का नहीं बल्कि जनता से घनिष्ठ सम्पर्क बनाने, उसको नज़दीक से जानने और उनकी आकांक्षाओं का माध्यम बनने, उनका विश्वास प्राप्त करने की शिक्षा लेने और उन्हें अपने साथ लाने का काम था। लेकिन सेण्ट पीटर्सबर्ग का यह कार्यकाल ही वह समय था, जिसने व्लादीमिर इलिच को मेहनतकश जनता के नेता के रूप में ढाला।

ज्योतिराव फुले - स्त्री मुक्ति के पक्षधर व जाति उन्मूलन आन्दोलन के योद्धा

11 अप्रैल 2017 को ज्योतिराव फुले की 190वीं जयन्ती मनाई गयी। लगभग 169 वर्ष पहले फुले ने बालिकाओं के लिए पहला विद्यालय खोलने का निर्णय लिया था। विधवा विवाह का समर्थन, विधवाओं के बाल कटने से रोकने के लिए नाइयों की हड़ताल, बाल विवाह का निषेध, विधवाओं के बच्चों का पालन-पोषण ऐसे अनेक क़दमों से ज्योतिराव-सावित्रीबाई का स्त्री समानता, स्त्री स्वतन्त्रता का दृष्टिकोण उद्घाटित होता है। स्त्री मुक्ति व जाति उन्मूलन के संघर्ष में फुले का योगदान बेहद महत्वपूर्ण है। आज हम सब जानते हैं कि स्त्री मुक्ति व जाति उन्मूलन आपस में गुँथे हुए हैं। जाति उन्मूलन के लिए अन्तरजातीय विवाह होने ज़रूरी हैं और वो तभी हो सकते हैं जब स्त्री मुक्त होगी। साथ ही स्त्री भी सच्चे मायनों में तभी स्वतन्त्र हो सकेगी जब जाति ख़त्म होगी।

सामाजिक परिवर्तन के लिए ज्योतिराव फुले सरकार की बाट नहीं जोहते रहे। उपलब्ध साधनों से उन्होंने अपने संघर्ष की शुरुआत की। सामाजिक सवालों पर भी फुले शेटजी (व्यापारी) व भटजी (पुजारी) दोनों को दुश्मन के रूप में चिह्नित करते थे। जीवन के उत्तरार्ध में वे ब्रिटिश शासन व भारतीय ब्राह्मणवादियों के गँठजोड़ को समझने लगे थे। इसीलिए उन्होंने कहा था कि अंग्रेज़ी सत्ता में अधिकांश अधिकारी ब्राह्मण हैं और जो अधिकारी अंग्रेज़ हैं उनकी हड्डी भी ब्राह्मण की ही है।

आज जब संघी फासीवादी जातिप्रथा व पितृसत्ता के आधार पर व साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण से दलितों, स्त्रियों व अल्पसंख्यकों पर हमले तीव्र कर रहे हैं, खाने-पीने-जीवनसाथी चुनने व प्रेम के अधिकार को भी छीनने की कोशिश कर रहे हैं, तब फुले को याद करने का विशेष औचित्य है। ब्राह्मणवाद व पूँजीवाद विरोधी संघर्ष तेज़ करके ही उनको सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकती है व उनके सपनों का समाज बनाया जा सकता है।

जन्मतिथि (9 अप्रैल) और स्मृति दिवस (14 अप्रैल) के अवसर पर

ग़रीब किसानों और मज़दूरों के 'राहुल बाबा'

राहुल सांकृत्यायन, जिन्हें ग़रीब किसान और मज़दूर प्यार से राहुल बाबा बुलाते थे, एक चोटी के विद्वान, कई भाषाओं और विषयों के अद्भुत जानकार थे, चाहते तो आराम से रहते हुए बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखकर शोहरत और दौलत दोनों कमा सकते थे, परन्तु वे एक सच्चे कर्मयोद्धा थे। उन्होनें आम जन, ग़रीब किसान, मज़दूर की दुर्दशा और उनके मुक्ति के विचार को समझा। उनके बीच रहते हुए उन्हें जागृत करने का काम किया और संघर्षों में उनके साथ रहे। वे वास्तव में जनता के अपने आदमी थे।

उन तमाम लेखकों व बुद्धिजीवियों से अलग जो अपने एसी कमरे में बैठकर दुनिया और उसमें घटनेवाली घटनाओं की तटस्थ व्याख्या करते हैं, जनता की दुर्दशा की और सामाजिक बदलाव की बस बड़ी-बड़ी बातें करते हैं या पद-ओहदा-पुरस्कार की दौड़ में लगे रहते हैं, राहुल ने अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल समाज को बदलने के लिए जनता को जगाने में किया। इसके लिए उन्होंने सीधी-सरल भाषा में न केवल अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें और सैकड़ों लेख लिखे, बल्कि लोगों के बीच घूम-घूमकर ग़ुलामी और अन्याय के खिलाफ़ संघर्ष के लिए उन्हें संगठित भी किया।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ ज़िले में एक पिछड़े गाँव में जन्मे राहुल के मन में बचपन से ही उस ठहरे हुए और रुढ़ियों में जकड़े समाज के प्रति बग़ावत की भावना घर कर गयी और विद्रोह-स्वरूप वे घर से भाग गये। 13 साल की उम्र में एक मन्दिर के महन्त बने, फिर आर्यसमाजी बनकर समाज में रूढ़ियों और मानसिक ग़ुलामी के खिलाफ़ अलख जगायी, लेकिन भारतीय समाज के सदियों पुराने गतिरोध, अन्धविश्वास, कूपमण्डूकता और जाति-पाँति जैसी सामाजिक बुराइयों को लेकर उनके विद्रोही मन में बेचैनी बढ़ती रही और उन्हें लगने लगा कि आर्यसमाज इन सवालों को हल नहीं कर सकता। उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया, लेकिन दुनिया-समाज में बराबरी और न्याय क़ायम करने का रास्ता उसके पास भी नहीं था। राहुल को अपने सभी सवालों का जवाब बौद्ध धर्म से भी न मिल पाया। समानता और न्याय पर टिके तथा हर प्रकार के शोषण और भेदभाव से मुक्त समाज बनाने की राह खोजते हुए वे मार्क्सवादी विचारधारा तक पहुँचे। उन्होंने गेरुआ चोगा उतारकर मज़दूरों-किसानों के लिए लड़ने और उनके दिमाग़ों पर कसी बेड़ियों को तोड़ डालने को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उन्होंने समझ लिया कि - "साम्यवादी समाज का आर्थिक निर्माण नयी तरह से करना चाहते हैं और वह निर्माण रफ़ू या लीपापोती करके नहीं करना होगा। एक तरह से उसे नयी नींव पर दीवार खड़ी करके करना होगा। भारत की साधारण जनता की ग़रीबी इतनी बढ़ी हुई है कि उसके लिए अनन्त की ओर इशारा नहीं किया जा सकता। हमें अपने काम में तुरन्त जुट जाना चाहिए।"

उनका स्पष्ट मानना था कि - "जनता के सामने निधड़क होकर अपने विचार को रखना चाहिए और उसी के अनुसार काम करना चाहिए। हो सकता है, कुछ समय तक लोग आपके भाव न समझ सकें और ग़लतफ़हमी हो, लेकिन अन्त में आपका असली उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान सभी ग़रीबों को आपके साथ सम्बद्ध कर देगा।"

और आम ग़रीबों से अपने को जोड़ने तथा रूढ़ियों व परम्पराओं पर प्रचण्ड प्रहार करने के लिए राहुल जी ने आम लोगों की बोलचाल की भाषा में 'भागो नहीं दुनिया को बदलो', 'दिमाग़ी ग़ुलामी', 'तुम्हारी क्षय', 'नइकी दुनिया', 'मेहरारुन के दुरदसा', 'साम्यवाद ही क्यों' जैसी छोटी-छोटी किताबें लिखकर लोगों को जागृत करने का काम शुरू कर दिया। साथ-साथ उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर किसानों और ग़रीबों को जगाना और अंग्रेज़ हुकूमत तथा ज़मींदारों के खिलाफ़ लड़ने के लिए संगठित करना भी शुरू किया। कई बार उन्हें जेल में डाला गया, लेकिन वहाँ भी वे लगातार लिखते रहे। उनकी कई किताबें तो अलग-अलग जेलों में ही लिखी गयीं।

राहुल दूर तक देख सकते थे, इसलिए उन्होंने यह समझ लिया था कि भारतीय समाज की तर्कहीनता, अन्धविश्वास सदियों पुराने गतिरोध, कूपमण्डूकता आदि पर करारी चोट करके ही आगे बढ़ाया जा सकता है। आज़ादी के आन्दोलन में जब धर्म का प्रवेश हुआ था, तभी राहुल ने इस बात को पहचान लिया था कि धार्मिक बँटवारे पर चोट करना बेहद ज़रूरी है। उन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का ही विरोध नहीं किया, बल्कि स्पष्ट रूप से बताया कि धर्म आज केवल जनता को बाँटने और शासकों की गद्दी सलामत रखने का औज़ार बन चुका है। उन्होंने खुले शब्दों में कहा - "धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है और इसलिए अब मज़हबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' - इस सफ़ेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मज़हब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हज़ार बरस से आजतक हमारा मुलक पागल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिए, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मज़हब वालों को दूसरे मज़हब वालों के ख़ून का प्यासा कौन बना रहा है? असल बात यह है - 'मज़हब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का ख़ून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मज़हबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर।"

किसानों की लड़ाई लड़ते हुए भी राहुल ने इस बात को नहीं भुलाया कि केवल अंग्रेज़ों से आज़ादी और ज़मीन मिल जाने से ही उनकी समस्याओं का अन्त नहीं हो जायेगा। उन्होंने साफ़ कहा कि मेहनतकशों की असली आज़ादी साम्यवाद में ही आयेगी। उन्होंने लिखा, "खेतिहर मज़दूरों को ख़याल रखना चाहिए कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है, और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ही जाकर रहेगी।"

वे बिना रुके काम में जुटे रहते। भारतीय समाज की हर बुराई, हर क़िस्म की दिमाग़ी ग़ुलामी, हर तरह के अन्धविश्वास, तमाम ग़लत परम्पराओं पर वह चोट करना चाहते थे, उनके विरुद्ध जनता को शिक्षित करना चाहते थे। वे मेहनतकश लोगों से प्यार करते थे और उनके लिए अपना जीवन क़ुर्बान कर देना चाहते थे। जीवन छोटा था, काम बहुत अधिक था। सदियों से सोये भारतीय समाज को जगाना आसान नहीं था। बाहरी दुश्मन से लड़ना आसान था, लेकिन अपने समाज में बैठे दुश्मनों और ख़ुद अपने भीतर पैठे हुए संस्कारों, मूल्यों, रिवाज़ों के खिलाफ़ लड़ने के लिए लोगों को तैयार करना उतना ही कठिन था। राहुल को एक बेचैनी सदा घेरे रहती। कैसे होगा यह सब। कितना काम पड़ा है! वे एक साथ दो-दो किताबें लिखने में जुट जाते। ट्रेन में चलते हुए, सभाओं के बीच मिलने वाले घण्टे-आध घण्टे के अन्तराल में, या सोने के समय में भी कटौती करके वह लिखते रहे। लगातार काम करते रहने से उनका लम्बा, बलिष्ठ, सुन्दर शरीर जर्जर हो गया। पर वह रुके नहीं। यह सिलसिला तब तक चला, जब तक मस्तिष्क पर पड़ने वाले भीषण दबाव से उन्हें स्मृतिभंग नहीं हो गया। याद ने साथ छोड़ दिया। आर्थिक परेशानी ने घेर लिया। पूरा इलाज भी नहीं हो सका और 14 अप्रैल 1963 को 70 वर्ष की उम्र में मज़दूरों-किसानों के प्यारे राहुल बाबा ने आँखें मूँद लीं। लेकिन उन्होंने जो मुहिम चलायी उसे आगे बढ़ाये बिना आज हिन्दुस्तान में इंक़लाब लाना मुमकिन नहीं है। आज हमारे समाज को जिस नये क्रान्तिकारी पुनर्जागरण और प्रबोधन की ज़रूरत है, उसकी तैयारी के लिए राहुल सांकृत्यायन का जीवन और कर्म हमें सदैव प्रेरित करता रहेगा।

महाविद्रोही जनमनीषी राहुल सांकृत्यायन के कुछ उद्धरण

"हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फ़ेंकने के लिए तैयार रहना चाहिये। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज्यादा ज़रूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें आगे-पीछे-दाहिने-बांये दोनों हाथों से नंगी तलवारें नचाते हुए अपनी सभी रुढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना होगा।"

"असल बात तो यह है कि मज़हब तो सिखाता है आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना। हिन्दुस्तानियों की एकता मज़हब के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर। कौव्वे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मज़हबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं।"

"यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम शक्ति ने, फ़ासिज्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।"

"रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं।"

"हमारे सामने जो मार्ग है उसका कितना ही भाग बीत चुका है, कुछ हमारे सामने है और बहुत अधिक आगे आने वाला है। बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना कोई प्रगति नहीं, प्रतिगति-पीछे लौटना होगा। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है।"

"जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे। ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ से फैलाई गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख्याल है धन बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर जो ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।"

"धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और इसलिए अब मजहबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' -इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मजहब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आजतक हमारा मुल्क पागल क्यों है पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों का खून का प्यासा कौन बना रहा है कौन गाय खाने वालों से गो न खाने वालों को लड़ा रहा है असल बात यह है – 'मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर होगी। कौवे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं है।"

"धर्म आज भी वैसा ही हज़ारों मूढ़ विश्वासों का पोषक और मनुष्य की मानसिक दासता का समर्थक है जैसा पाँच हज़ार वर्ष पूर्व था।... सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इन धार्मिक झगड़ों को देखिये तो मनुष्यता पनाह माँग रही है।"

नुक्कड़ नाटक

अब अपनी आवाज़ उठाओ!

तीन नेता-टाइप लोग एक मज़दूर दिखने वाले व्यक्ति को पीटते हुए मंच पर आते हैं। एक ने आप जैसी टोपी पहनी है, एक के गले में भगवा गमछा है और एक के गले में तिरंगा गमछा है। व्यक्ति के बचाओ-बचाओ चिल्लाने पर कुछ लोग उसकी मदद के लिए आते हैं।

जनता 1 : अरे-अरे नेताजी, क्यों मार रहे हो बेचारे को?

जनता 2 : हाँ नेताजी, ऐसा क्या कर दिया इसने? ये तो मज़दूर आदमी है, क्यों मार रहे हो इसको?

जनता 3 : ये बेचारा तो हर चुनाव में वोट देता है, देश का ईमानदार नागरिक है, आप लोग क्यों मार रहे हो उसको?

आप : इसने काम ही मार खाने का किया है।

भाजपा : ऐसे सवाल पूछेगा तो और मार खायेगा। देशद्रोही कहीं का।

कांग्रेस : ये फ़ालतू के सवाल पूछकर लोकतन्त्र को कमज़ोर कर रहा था।

तीनों जनता : मगर ये पूछ क्या रहा था?

आप : अरे ये पूछ रहा था कि पिछले चुनाव में किये आपके वादों का क्या हुआ?

भाजपा : पूछ रहा था कि चुनाव जीतने के बाद से आपने हमारे लिए क्या किया?

कांग्रेस : बताओ, ये भी कोई पूछने की बात है? ऐसी गन्दी-गन्दी बातें पता नहीं कहाँ से इनके दिमाग़ में भर जाती हैं।

जनता 1 : मगर नेता जी, आपके वादों के बारे में पूछना तो हमारा अधिकार है।

जनता 2 : आपके नेता तो कहते हैं कि वादे पूरे न हुए तो मुझे चौराहे पर लटका देना, लात मारकर भगा देना।

जनता 3 : बार-बार चुनाव में वोट देकर भी हमारी ज़िन्दगी बद से बदतर होती जाये, और हम सवाल भी न पूछें?

जनता 1 : आपको अपने वादे निभाने होंगे।

जनता 2 : हम आपको आपके वादों की याद दिलाते रहेंगे।

जनता 3 : हमें आपसे जवाब तलब करने का पूरा अधिकार है। आखिर आप लोग जनता के सेवक कहलाते हैं।

तीनों एक साथ : ख़ामोश! देशद्रोहियो, भागो यहाँ से।

तीनों जनता : हम नहीं जायेंगे, हमें जवाब चाहिए। (नारे लगाते हैं)

तीनों आपस में आँखों-आँखों में बात करते हैं।

फिर एक साथ : जवाब चाहिए? लो जवाब। लाठीचार्ज!!!

(तीनों लाठीचार्ज करते हैं। लोग गिरते हैं। फ़्रीज़। दूसरी ओर से एक व्यक्ति गत्ते का टीवी का फ्रेम चेहरे के सामने किये हुए आता है।)

टीवी : ढैन टड़ाँ.... सुनिए, आज की सबसे बड़ी ख़बर। जो सबसे पहले आपके लिए लेकर आया है हमारा चैनल। बड़ी ख़बर... ब्रेकिंग न्यूज़.... सुनिए, ज़रा ग़ौर से सुनिए। चुनाव आयोग ने राजधानी दिल्ली में नगर निगम चुनावों की घोषणा कर दी है। दिल्ली के तीनों नगर निगमों में 22 अप्रैल को चुनाव होंगे। सभी बड़ी पार्टियों ने चुनाव की तैयारियाँ तेज़ कर दी हैं और मतदाताओं को लुभाने के लिए नेता मैदान में उतर पड़े हैं।

ढैन टड़ाँ..... (जाता है)

(फ़्रीज़ टूटता है। तीनों नेता पहले जिसे पीट रहे थे, अब उस व्यक्ति को घेरकर उसके आगे हाथ जोड़कर लगभग दण्डवत हो जाते हैं। गोल घूमकर गाते हैं।)

तीनों : *जै वोटर भइया, बोलो जै वोटर मइया। अबकी इलेक्शन में तू, पार लगादे नइया। बोलो जै वोटर भइया, बोलो जै वोटर मइया।*

मज़दूर : ठीक-ठीक है। अभी हमको जाने दो, फ़ैक्टरी जाना है।

जनता 1 : नेता जी, अब तो इसके सवाल का जवाब दे दो।

आप : (खाँसते हुए) हम तो जवाब देने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। हम तो आम आदमी हैं, हमसे तो कोई कभी भी कुछ भी पूछ सकता है।

जनता 2 : आपने चुनाव में कहा था कि नौकरियों में ठेकेदारी ख़त्म कर देंगे, सबको पक्का रोज़गार देंगे, उसका क्या हुआ?

आप : देखिये, हमने इसके लिए कमेटी बना दी है। सन 2027 तक कमेटी सर्वे करके हमको बता देगी कि दिल्ली में कहाँ-कहाँ कितने लोग ठेके पर काम कर रहे हैं, फिर हम 2037 तक सबको पक्की नौकरी दे देंगे।

जनता 3 : बहुत अच्छे! तब तक हम ज़िन्दा रहे तो नौकरी पक्की समझो।

मज़दूर : और कच्ची कालोनियों को पक्का करने के वादे का क्या हुआ?

आप : देखिये, कच्ची... पक्की... ये तो नाम की बातें हैं। कच्ची क्या, पक्की क्या? कुछ चीज़ें कच्ची अच्छी लगती हैं, कुछ पक्की अच्छी लगती हैं। वैसे हमारी सरकार ग़रीबों के लिए बहुत काम कर रही है। हमने दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाकर 13000 कर दी है। इतने पैसे में मज़दूर आदमी भी अच्छी जगह जाकर रह सकता है, कच्ची कालोनी में रहने की क्या ज़रूरत है?

मज़दूर : मज़दूरी ख़ाली टीवी और अख़बार की ख़बरों में बढ़ी है। हम आज भी इतनी ही मजूरी पर 12-12 घण्टे काम करते हैं जिसमें मुश्किल से दो वक़्त की रोटी मिल पाती है।

जनता 1 : हर साल मज़दूरी बढ़ाने की घोषणाओं का ये खेल हम लोग बहुत साल से देख रहे हैं। सरकार का रेट अलग और मालिक का रेट अलग।

जनता 2 : अरे, पहले आप अपने मन्त्रियों के कारख़ाने में तो बढ़ी मज़दूरी लागू करके दिखाइये। आप के तमाम विधायक और एमसीडी चुनाव के उम्मीदवार ख़ुद वज़ीरपुर से लेकर पीरागढ़ी में कारख़ाने चलवाते हैं, वे अपने ही इण्डस्ट्रियल इलाक़े में सही मज़दूरी लागू करवा दें।

जनता 3 : सारे मालिक मिलकर मज़दूरी की चोरी करते हैं, इसमें आपको भ्रष्टाचार नहीं दिखता?

आप : खों-खों खों-खों। देखिए, गरम मत होइए। हमने 700 लीटर पानी मुफ़्त कर दिया है, ठण्डा पानी सिर पर डालिए और दिमाग़ ठण्डा करिए। ठण्डा-ठण्डा कूल-कूल। हमने तो दिल्ली के सरकारी स्कूलों में भी स्विमिंग पूल बना दिये हैं। कहीं देखा है ऐसा?

मज़दूर : नेता जी, हमारी बस्ती में तो आज भी सरकारी नल से पानी लेने के लिए लाइन लगानी पड़ती है। रोज़ झगड़ा होता है।

जनता 1 : हज़ारों घरों में तो आज तक पाइप लाइन ही नहीं पहुँची है। दूसरे, जिस परिवार ने 700 लीटर से ज़्यादा पानी इस्तेमाल किया उसको पूरे पानी का पहले से भी ज़्यादा रेट से पैसा देना पड़ता है। रोज़ दो बाल्टी से ज़्यादा मतलब 700 लीटर पार... आपकी ये चालाकी अब हम समझ गये हैं।

जनता 2 : और रही बात स्कूल की, तो आपने 500 नये स्कूल खोलने का वादा किया था। मगर पुराने स्कूलों में 4-5 नये कमरे बनवाकर उसी का ढिंढोरा पीट रहे हैं।

जनता 3 : दो साल में एक भी नये स्कूल का काम नहीं शुरू हुआ है।

आप : देखिए, हमारे पास कोई जादू की छड़ी नहीं है। काम करने में समय लगता है।

मज़दूर : अच्छा? ग़रीबों और मज़दूरों के लिए काम करने में समय लगता है? और व्यापारियों के लिए काम करने में बिल्कुल समय नहीं लगता?

जनता 1 : आपकी सरकार ने धनी व्यापारियों, कारख़ानेदारों और ठेकेदारों की चाँदी कर दी है, उन पर टैक्स और चौकसी विभाग का दबाव पूरी तरह ख़त्म कर दिया है, ताकि वे आराम से हमको लूट सकें।

जनता 2 : इसीलिए आप कहते हैं कि व्यापार आपके ख़ून में है।

जनता 3 : व्यापारी, ठेकेदार और मालिक लोग इसीलिए आपसे ख़ुश हैं।

भाजपा (चिल्लाकर) : बिल्कुल सही बात है भाइयो-बहनो, ये बिल्कुल फ़्रॉड है।

कांग्रेस : ये धोखेबाज़ है। अरे काम करने वाले तो हम हैं। तुम लोगों ने हमें ही हटा दिया।

मज़दूर : आप लोग तो चुप ही रहिए। आपको भी हमने अच्छी तरह देख लिया है।

भाजपा : देखिए, केन्द्र में हमारी सरकार है। मगर दिल्ली में ये लोग कोई काम नहीं होने देते।

जनता 1 : आपकी सरकार के कारनामे हमने देख लिये हैं। तीन साल में आप लोग कौन से अच्छे दिन लाये हैं, सबके सामने है।

जनता 2 : महँगाई ने जीना हराम कर दिया है। दाल, तेल, खाने-पीने की सारी चीज़ें हमारी पहुँच से बाहर होती जा रही हैं। रसोई गैस और पेट्रोल के दाम बार-बार बढ़ाते रहते हैं।

जनता 3 : बस अम्बानी, अडानी और दूसरे सेठ लोगों की मौज है। सारे अच्छे दिन उन्हीं के लिए हैं।

भाजपा : भाइयो-बहनो, देखिए, हमारे महान नेता, शक्तिशाली नेता, चमत्कारी नेता दिन में 36 घण्टे ग़रीबों के बारे में ही सोचते रहते हैं। थोड़ा धीरज रखिए, आपकी ज़िन्दगी बदल जायेगी।

मज़दूर : वो तो हम देख ही रहे हैं। बेरोज़गारी की मार से हम पहले ही बेहाल थे, ऊपर से नोटबन्दी करके करोड़ों लोगों की रोज़ी-रोज़गार और छीन लिया।

भाजपा : वो तो काले धन पर सर्जिकल स्ट्राइक थी...

जनता 1 : कौन सा काला धन? सारे काले धन वाले तो मौज में हैं।

जनता 2 : उधर माल्या माल ले गया, इधर अम्बानी, अडानी और तमाम धन्नासेठ बैंकों के हज़ारों करोड़ रुपये बिना डकार के गड़प कर गये।

जनता 3 : सबके खाते में 15 लाख देने का जुमला भी अब आप भूल गये हैं।

भाजपा : तुम लोगों का दिमाग़ किसी ने ख़राब कर दिया है। तुम लोग देशद्रोहियों के चक्कर में पड़ गये हो।

जनता 1 : कहाँ हर साल दो करोड़ रोज़गार देने का वादा था और कहाँ हालत ये है कि दो साल में दो करोड़ नये बेरोज़गार पैदा हो गये।

जनता 2 : जब हम महँगाई, बेरोज़गारी की बात करें तो आप कभी गाय, कभी लव जिहाद, कभी मन्दिर का पटाखा छोड़ देते हो।

जनता 3 : कहते थे सबका साथ सबका विकास - लेकिन सबको आपस में लड़ाने में लगे हुए हो।

मज़दूर : अब हम आपके चक्कर में नहीं आने वाले हैं।

भाजपा : तुम लोग सब बहकी-बहकी बातें कर रहे हो। इस चुनाव में हमें वोट दो और हम दिल्ली को स्वर्ग बना देंगे।

मज़दूर : ये तो सही बात है। आप लोग हमें जीते जी स्वर्ग लोक पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हो।

जनता 1 : बीस साल से एमसीडी पर तो आप ही लोगों का क़ब्ज़ा है। भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा अड्डा बन गया है एमसीडी।

जनता 2 : ग़रीबों के इलाक़ों में गन्दगी और कूड़े-कचरे का ढेर लगा रहता है। निगम के कर्मचारियों को कई-कई महीने तनख़्वाह नहीं मिलती।

जनता 3 : हमारे टैक्स के पैसों से ख़ाली अमीरों के इलाक़ों में साफ़-सफ़ाई और बिजली का इन्तज़ाम होता है।

कांग्रेस : इसीलिए हम कह रहे हैं कि हमें जिताओ। ऐसे धोखेबाज़ों के चक्कर में पड़ोगे तो कुछ नहीं मिलेगा।

मज़दूर : इतने सालों से देश को लूटते रहे, अब भी आप लोगों का पेट नहीं भरा?

कांग्रेस : देखिए, आप लोगों ने हमें बाहर करके अच्छा नहीं किया। हमारे पास आपको ठगने का... सॉरी, मेरा मतलब है आपका विकास करने का 70 साल का एक्सपीरियंस है। हमारी पुरानी खानदानी दुकान.... सॉरी, मेरा मतलब है पुरानी पार्टी को छोड़कर आप लोग नये-नये फेरीवालों के चक्कर में पड़ गये हैं। आप लोग हमें सेवा का एक और मौक़ा दीजिए, हम आपको दिखा देंगे कि हम लोगों को उल्लू बनाने के... सॉरी, आगे बढ़ाने के एक्सपर्ट हैं।

जनता 1 : आप किस बात के एक्सपर्ट हैं, वो हम सबने अच्छी तरह देख लिया है। अपने 50 साल के शासन में आपने हमें ग़रीबी, भुखमरी, बेकारी, जाति-धर्म की राजनीति के अलावा और क्या दिया है?

जनता 2 : सारे देशी-विदेशी लुटेरों की सेवा आप लोग अच्छी तरह से करते रहे हैं।

जनता 3 : जात-धरम की जो राजनीति ये भगवा झण्डे वाले खुलकर करते हैं, वही आप लोग छुपकर करते हैं।

चारों एक साथ ज़ोर से : अब तुम लोगों की ये धोखाधड़ी नहीं चलेगी।

आप (घबराकर) : ये आप लोग क्या कह रहे हैं? हम तो आप ही के हैं।

भाजपा : तुम्हारी ये मजाल? अभी तुम्हारे होश ठिकाने लगाते हैं।

कांग्रेस (पीछे देखकर) : मम्मी, देखो ये लोग क्या कह रहे हैं!

मज़दूर : चुप करो। इतने साल तक हम तुम्हारी बकवास सुनते रहे।

जनता 1 : तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते रहे।

जनता 2 : तुम्हारे बहकावे में आकर आपस में लड़ते रहे।

जनता 3 : हम भूल गये थे कि हमारे पास अपनी भी कोई आवाज़ है।

मज़दूर : अब तुम्हें हमारी चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं है। हम अपनी आवाज़ ख़ुद उठायेंगे।

आप : अरे वाह! तू अपनी आवाज़ ख़ुद उठायेगा? चींटी के भी पर निकलने लगे हैं?

भाजपा : ज़रा सुनें तो कौन है तुम्हारी आवाज़। हम सच्चे देशभक्तों को छोड़कर तुम कौन से देशद्रोहियों के चक्कर में पड़ गये हो?

कांग्रेस : हाँ-हाँ, ज़रा हम भी तो सुनें कि तुम्हारी आवाज़ कैसी है?

मज़दूर : हमारी आवाज़ का नाम है 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा'।

जनता 1 : अब बड़े चोर और छोटे चोर के बीच से किसी एक को चुनने की कोई मजबूरी नहीं।

जनता 2 : अब हम नागनाथ और साँपनाथ में से किसी एक को नहीं चुनेंगे। धन्नासेठों, ठेकेदारों, बिल्डरों, व्यापारियों की इस या उस पार्टी में से किसी को नहीं चुनेंगे।

जनता 3 : अब हम अपने बीच से, ग़रीबों और मज़दूरों के सच्चे प्रतिनिधियों को चुनेंगे, जो हमारी आवाज़ को मज़बूती से नगर निगम में उठायेंगे।

तीनों (धमकाते हुए) : तुम लोगों को पछताना पड़ेगा। ये हमारा खेल है, इस मैदान में कोई दूसरा नहीं घुस सकता।

चारों : दफ़ा हो जाओ तुम सब यहाँ से।

मज़दूर : (लोगों का आह्वान करते हुए) आओ साथियो -

तीनों जनता एक साथ : आओ साथियो - (जनता में से कुछ लोग निकलकर मंच की ओर बढ़ते हैं। तीनों नेता घबराकर भागते हैं।)

सब मिलकर गाते हैं :

हम मेहनतकश जगवालों से जब अपना हिस्सा माँगेंगे

इक खेत नहीं, इक देश नहीं हम सारी दुनिया माँगेंगे...

(दिल्ली नगर निगम चुनाव में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रत्याशियों के समर्थन में तैयार नाटक)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर।एम।एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

क्या रेलवे में दो लाख से ज़्यादा नौकरियाँ कम कर दी गयी हैं...

– रवीश कुमार

आज (2 मार्च) के टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के पेज नम्बर 20 पर प्रदीप ठाकुर की रिपोर्ट छपी है। रिपोर्टर ने तो अपनी तरफ़ से ख़बर छाप दी है, मगर इस ख़बर के आँकड़े बता रहे हैं कि सरकार रोज़गार को लेकर किस तरह से खेल करती है। अख़बार के अनुसार सरकार ने इस बार के बजट में 2 लाख 80,000 नौकरियों के लिए बजट का प्रावधान किया है। सबसे अधिक भर्ती आयकर विभाग में होगी, जिसकी क्षमता को 46,000 से बढ़ाकर 80,000 करने की बात है। उत्पाद शुल्क विभाग में भी 41,000 लोग रखे जायेंगे। इस वक़्त उत्पाद व शुल्क विभाग की क्षमता 50,600 है जिसे बढ़ाकर 91,700 किया जायेगा। किस स्तर की नौकरी है, उनकी प्रकृति क्या होगी, यह सब साफ़ नहीं है। यह भी साफ़ नहीं है कि कितने दिनों में भर्तियों का काम पूरा कर लिया जायेगा। क्या आयकर,उत्पाद व शुल्क विभाग ने एक साल के भीतर कभी भी अस्सी हज़ार भर्तियाँ कर सका है? रिपोर्ट से साफ़ नहीं है और मुझे भी नहीं लगता है। ऐसी रिपोर्ट अख़बारों में छपती है तो संख्या के कारण आकर्षक लगती है।

सातवें वेतन आयोग की रिपोर्ट में केन्द्र सरकार के विभागों में मंज़ूर पदों और बहाल पदों को लेकर रोज़गार का अच्छा विश्लेषण है। आयोग ने तमाम विभागों से आँकड़े जुटाकर तमाम तथ्य रखे हैं। (http://7cpc.india.gov.in/pdf/sevencpcreport.pdf) इस लिंक पर जाकर देख सकते हैं। इसकी एक तालिका से पता चलता है कि राजस्व विभाग में 2006 से 2014 यानी आठ सालों के बीच मात्र 25,070 बहालियाँ हुईं। इससे आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं या सवाल पूछ सकते हैं कि राजस्व विभाग में अस्सी हज़ार भर्तियाँ कब तक होंगी। कहीं 2030 तक तो नहीं! हर विभाग में नौकरियों की स्थिति का कच्चा चिट्ठा सातवें वेतन आयोग की रिपोर्ट में है।

टाइम्स ऑफ़ इण्डिया की रिपोर्ट में लिखा है कि बजट के एनेक्सचर में रेलवे के मैनपावर में 2015 से लेकर 2018 तक कोई बदलाव नहीं है। यानी सरकार ने मैनपावर बढ़ाने का कोई लक्ष्य नहीं रखा है। अख़बार में छपी तालिका के अनुसार 2015 से '18 के बीच हर साल रेलवे की कार्यक्षमता यानी मैनपावर 13,26,437 से लेकर 13,31,433 ही रहेगा। 1.1.2014 को रेलवे की मंज़ूर क्षमता 15 लाख 57 हज़ार थी। अगर टाइम्स ऑफ़ इण्डिया की तालिका सही है तो मोदी सरकार से सवाल पूछा जाना चाहिए कि क्या रेलवे की नौकरियों में भारी कटौती की गयी है? यूपीए के समय से ही रेलवे में छँटनी होती आ रही है, लेकिन उनके समय मंज़ूर पदों की संख्या 15 लाख थी जो अगले तीन साल के लिए क़रीब 13 लाख बतायी गयी है। मंज़ूर पदों की संख्या में ही दो लाख की कमी? सातवें वेतन आयोग की तालिका से पता चलता है कि रेलवे में कभी भी मंज़ूर क्षमता के बराबर भर्तियाँ नहीं हुई हैं। यूपीए के समय पहली जनवरी 2014 को मंज़ूर क्षमता 15 लाख 57 हज़ार थी, तब 13 लाख 61 हज़ार ही लोग काम कर रहे थे। अब तो मंज़ूर क्षमता दो लाख कम कर दी गयी है। अगर इसके नीचे लोग काम करेंगे तो रेलवे में नौकरियों की वास्तविक संख्या दो लाख से भी ज़्यादा घट जायेगी।

प्रधानमन्त्री ने यूपी की चुनावी सभा में कहा था कि रेलवे में एक लाख भर्तियां हुई हैं। आप सातवें वेतन आयोग और टाइम्स ऑफ़ इण्डिया की तालिका के आधार पर परख सकते हैं कि प्रधानमन्त्री या तो झूठ बोल रहे हैं या ग़लत बोल रहे हैं। टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के अनुसार अनुमानित क्षमता में इतनी वृद्धि नहीं दिखती है। 2015 के लिए रेलवे की अनुमानित क्षमता 13,26,437 है। 2016 के लिए 13,31,433 है। ये बजट के आँकड़े हैं। मात्र चार-पाँच हज़ार की वृद्धि दिखती है। सरकार को इस बिन्दु पर जवाब देना चाहिए। विपक्ष कभी नहीं पूछेगा। भारत के इतिहास में इससे आलसी विपक्ष कभी नहीं हुआ। उसे डर लगता है कि पूछेंगे तो उनसे भी पूछा जायेगा। तो पूछिए। किसी युवा को नौकरी मिलनी ज़्यादा ज़रूरी है या पूछा-पूछी में कौन जीतेगा वो ज़रूरी है।

रेलवे देश में सबसे अधिक सरकारी रोज़गार देती है। सातवें वेतन आयोग की रिपोर्ट के अनुसार 2006-2010 यानी 4 साल के बीच रेलवे में 90,629 भर्तियाँ ही हुईं। 2006 से 2014 के बीच 3 लाख 30,972 भर्तियाँ दिखायी गयी हैं। केन्द्र सरकार के तमाम विभागों में 2006 में 37.01 लाख कर्मचारी थे। 2014 में यह संख्या बढ़कर 38.90 लाख हुई। आठ साल में यूपीए सरकार का रिकार्ड कितना ख़राब है। आप इस संख्या से आसानी से समझ सकते हैं। इसी तरह के आँकड़े रक्षा मन्त्रालय को लेकर भी दिख रहे हैं कि वहाँ भी बहाली कम होती जा रही है। हर विभाग में मंज़ूर क्षमता के हिसाब से दस से बीस फ़ीसदी पद ख़ाली हैं। सरकार जानबूझकर बेरोज़गारी पैदा कर रही है। चुनावी ख़र्चे में तो कोई कमी नहीं आती है, मगर वित्तीय बजट घाटे को कसने के लिए तरह-तरह के क़दमों को सही ठहराया जाता रहता है।

भारत के सरकारी संस्थाओं की हालत क्यों ख़राब है। इसलिए नहीं कि वहाँ कोई काम नहीं करना चाहता, बल्कि वहाँ काम करने वाले नहीं हैं। दिल्ली में एक लाख की आबादी पर निगमों के कर्मचारी की संख्या 1260 है। आप सोचिए। सफ़ाई के लिए कितने कम कर्मचारी होंगे। जब कर्मचारी नहीं होंगे तो शहर को साफ़ कौन करेगा। इस सवाल से बचने के लिए लगातार आपके दिमाग़ में यह बात ठूँसी जा रही है कि लोग शहर को गन्दा करते हैं। सरकार नहीं बताती है कि स्वच्छता अभियान के तहत कितने कूड़ेदान किस शहर में रखे गये और इन्हें साफ़ करने के लिए कितने लोगों को काम दिया गया। बोगस बातें चारों तरफ़ चल रही हैं। हर सवाल हिन्दू-मुस्लिम और राष्ट्रवाद जैसी फ़टीचर बातों पर पहुँच जाता है।

अमरीका में एक लाख की आबादी पर वहाँ के केन्द्रीय कर्मचारियों की संख्या 668 है। भारत में एक लाख की आबादी पर केन्द्रीय कर्मचारियों की संख्या 138 है। आबादी अमरीका से कहीं ज़्यादा भारत में है, मगर कर्मचारी अमरीका में तिगुने हैं। तो साफ़-सुथरा और व्यवस्थित कौन दिखेगा। भारत या अमरीका? क़ायदे से टाइम्स ऑफ़ इण्डिया की हेडलाइन होनी चाहिए थी कि सरकार ने रेलवे के मंज़ूर पदों की संख्या में दो लाख की कटौती की, मगर हेडलाइन है कि सरकार दो लाख अस्सी हज़ार पदों पर भर्तियाँ करेगी। इसी रिपोर्ट में अख़बार यह भी लिखता है कि केन्द्र सरकार को आईटी, आयकर, उत्पाद व शुल्क विभाग में एक लाख 88 हज़ार नये लोगों को रखना था। मगर सरकार पदों को भर नहीं पायी। तो फिर अख़बार को बताना चाहिए कि 2 लाख 80 हज़ार के आँकड़ों में बैकलॉग कितना है, नयी नौकरियाँ कितनी हैं। 2014-2016 के बीच जो सरकार दो लाख लोगों को नहीं रख सकी, वो क़रीब तीन लाख लोगों को कितने साल में रखेगी। रुकिए। इसी रिपोर्ट में एक और आँकड़ा है। दो साल में भर्तियों का लक्ष्य पूरा नहीं होने के कारण उत्पाद व शुल्क, आईटी और आयकर विभाग में कर्मचारियों की संख्या में 21,000 की कमी आ गयी। इसीलिए कहता हूँ हम सब अख़बार पढ़ते तो हैं, मगर किसी को अख़बार भी पढ़ना नहीं आता है।

नोट - 2017 की यूपीएससी की परीक्षा के लिए 980 पद तय हुए हैं। पिछले पाँच साल में यह सबसे कम है। बाक़ी आप क़ब्रिस्तान और श्मशान के मसले को लेकर बहस कर लीजिए। इसी को ईमानदारी से कर लीजिए। लोग अब नालों के किनारे अन्तिम संस्कार करने लगे हैं। ज़्यादा दूर नहीं, दिल्ली से सिर्फ़ बीस किमी आगे लखनऊ रोड पर। बोलिए कि इसके विकल्प में कोई सरकार क्या करने वाली है। क़ब्रिस्तानों पर भूमाफ़ियाओं के क़ब्ज़े हैं। ये माफ़िया हिन्दू भी हैं और मुस्लिम भी हैं। बताइए कि क्या ये ज़मीनें मुक्त हो पायेंगी। लेकिन इसमें ज़्यादा मत उलझिए। नौकरी के सवाल पर टिके रहिए। मर गये तो कौन कैसे फूँकेंगे या गाड़ेगा यह कैसे पता चलेगा और जानकर करना क्या है। हम और आप तो जा चुके होंगे।

(लेखक एनडीटीवी इंडिया के वरिष्ठ पत्रकार हैं)

(यह लेख भी देखें " बेरोज़गारी ख़त्म करने के दावों के बीच बढ़ती बेरोज़गारी!" - पेज 10)

नया वित्त विधेयक : एक ख़तरनाक क़ानून

सत्ता पर पूँजीपतियों की और जनता पर सरकार की जकड़बन्दी और सख़्त करने के लिए डेढ़ दर्जन क़ानूनों में बदलाव

– मुकेश त्यागी

भारत और दुनिया के इतिहास के बहुतेरे सबक़ों के बाद भी बहुत सारे लोगों, ख़ासतौर पर उदारवादी और वामपन्थी बुद्धिजीवियों को यह ग़लतफ़हमी रही है कि पूँजीवादी जनतान्त्रिक व्यवस्था के संवैधानिक नियम-क़ायदे और संसद, अदालत, मीडिया, प्रशासन, आदि ढाँचा फ़ासीवादी ताक़तों के इरादों पर लग़ाम लगा सकते हैं। इनका सोचना था कि एक बार सत्ता में आने पर सरकारी काम-काज के नियम-रिवाज़, सरकारी संस्थाओं में पदस्थ व्यक्ति, न्यायालयों की सक्रियता और ख़ासतौर पर राज्यसभा में बहुमत का अभाव मोदी के नेतृत्व वाली सरकार के फ़ासीवादी राह पर बढ़ने में रुकावट डालेगा और मजबूर होकर उन्हें कुछ हद तक तो जनतान्त्रिक बनना पड़ेगा। इन उदारवादियों और संसदीय वामपन्थियों का कहना था कि राज्यसभा में बहुमत न मिलने तक बीजेपी सरकार अपनी मनमर्ज़ी के क़ानून नहीं बना सकेगी। वैसे तो आधार अथॉरिटी के क़ानून को ही मनी बिल के रूप में पेश करके राज्यसभा में जाये बग़ैर ही लोकसभा में पारित करवाकर इस सरकार ने अपने इरादे ज़ाहिर कर दिये थे, पर इस बार बजट के साथ लाये जाने वाले वित्त विधेयक (फ़ाइनेंस बिल) में रस्मी बहस का भी अधिकांश हिस्सा पूरा हो जाने के बाद 30 मार्च को अचानक संशोधन के रूप में लगभग 40 और क़ानूनों को भी लोकसभा से ही बग़ैर किसी बहस के ही पारित कराकर इस सरकार ने दिखा दिया है कि वर्तमान बुर्जुआ जनतन्त्र का ढाँचा कभी फ़ासीवादी ताक़तों के रास्ते की रुकावट नहीं बन सकता। इस संवैधानिक ढाँचे में पूँजीवादी शासक वर्ग की हर क़िस्म की वक़्ती ज़रूरतों के लिए बहुत सारे प्रावधान हैं जिनका इस्तेमाल करके वे ओढ़ा हुआ जनवाद का मुखौटा कभी भी उतारकर बिल्कुल क़ानूनी रास्ते से ही मेहनतकश जनता के समस्त अधिकारों पर नग्न हमला जारी रख सकते हैं।

याद रहे कि 1975 में भारत में इन्दिरा गाँधी की कांग्रेसी सरकार द्वारा लायी गयी इमरजेंसी भी इसी संविधान, संसद और न्याय व्यवस्था के द्वारा पूरी तरह क़ानूनी रास्ते ही लागू की गयी थी। इटली और जर्मनी में भी फ़ासीवादी 'जनतान्त्रिक' चुनावों के ज़रिये ही सत्ता में आये थे और उन्होंने भी अपने सारे भयानक अत्याचार संसद में क़ानून पास करा और न्यायालयों द्वारा दिये गये आदेशों के माध्यम से ही अंजाम दिये थे। 24 मार्च 1933 को जर्मन संसद ने ही 'जनता और जर्मन राज्य की पीड़ा-निवारण क़ानून' नाम का क़ानून पारित कर हिटलर की नाज़ी पार्टी को वो सारी शक्तियाँ दी थीं, जिनके सहारे उन्होंने करोड़ों का क़त्ल किया। क़ानून और चुनाव के नाम पर तब भी तर्क दिया गया था कि आलोचना-विरोध से पहले हिटलर को एक मौक़ा दिया जाना चाहिए, अपना काम प्रदर्शित करने का। तथाकथित लिबरलों और मज़दूर आन्दोलन के मौक़ापरस्तों का कहना था कि जनतान्त्रिक व्यवस्था में मौक़ा मिलने पर नाज़ियों का अतिवादी-उग्र चरित्र बदल जायेगा।

फ़ाइनेंस बिल के ज़रिये क़ानूनों में किये गये परिवर्तनों की चर्चा से पहले इस जनतान्त्रिक संविधान के कुछ प्रावधानों को समझ लेते हैं। कहने के लिए भारत एक संघीय गणतन्त्र (राज्यों का संघ) है लेकिन संसद में राज्यों के अधिकारों का प्रतिनिधित्व करने वाली राज्यसभा में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व नहीं है, बड़े राज्यों को ही ज़्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया है। न ही इसके सदस्यों का चुनाव आम मतदाताओं द्वारा किया जाता है, राज्य के विधायकों द्वारा चुनाव में राजनीतिक दलों और धनपशुओं द्वारा जोड़-तोड़, ख़रीद-फ़रोख़्त ही इस चुनाव का एकमात्र आधार है। अब कुछ सालों से तो राज्य के प्रतिनिधि के लिए उस राज्य का निवासी होने की शर्त भी हटा दी गयी है। इसीलिए इसमें या तो शासक दलों के वे विश्वस्त लोग जाते हैं जो तमाम धन बल के भी किसी वजह से लोक सभा का चुनाव हार जाते हैं या विजय माल्या, सुभाष गोयल, राजीव चन्द्रशेखर, अमर सिंह, आदि धनबल से सीट ख़रीदने वाले लोग। इसलिए राज्यसभा वैसे भी आजकल शासक और विपक्षी दलों के साथ ही इन सब शातिर लोगों के बीच सौदेबाज़ी का एक अड्डा बना हुआ है।

मनी बिल क्या है, इसको भी थोड़ा समझ लेना यहाँ ज़रूरी है। इसका स्रोत इंग्लैण्ड में बुर्जुआ संसद के इतिहास में है। इंग्लैण्ड में तत्कालीन राजशाही और उभरते बुर्जुआ वर्ग के बीच विवाद का विषय था कि किस पर कितना टैक्स लगाया जाये और उससे एकत्र धन का ख़र्च किन मदों में हो, यह तय करने का अधिकार राजशाही का हो या टैक्स चुकाने वाले बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधियों का। इस विवाद में बुर्जुआ वर्ग की प्रतिनिधि संसद ने अपनी सेना खड़ी

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006